आधुनिक काव्य-संचय

संकलन के विषय में

विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के लिए प्रति वर्ष प्रायः संकलनों के नूतन संस्करण निकलते ही रहते हैं। उसी 'पुरानी लकीर को पीटने' का प्रयास मात्र यह संकलन प्रतीत होगा। पर प्रत्येक नवजात अपना औचित्य वहन करता ही है। इस संग्रह में आधुनिक काल के प्रतिनिधि महाकाव्य, खण्डकाव्य, पाठ्य-मुक्तक तथा गीति-मुक्तक—सब विधाओं को समाविष्ट किया गया है। प्रयोजन स्पष्ट है—एक ओर वर्तमान काल के प्रमुख काव्य-सर्जना करने वाले कलाकारों से परिचय कराना तथा दूसरी ओर प्रमुख काव्य-विधाओं की प्रवृत्तियों को प्रकाश में लाना। इन दिनों हमारे पाठ्य-ग्रंथों में अतीत साहित्यिक निधि का तो दिग्दर्शन होता है पर आधुनिक काव्य-सर्जना का प्रभूत परिचय नहीं होता। 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' के सिद्धान्त से नवीन सर्जना से सौहार्द स्थापित करवाने का प्रयास किया गया है। इसमें तीन महाकाव्य एक खण्डकाव्य, कुछ मुक्तक तथा कुछ गीतिकाव्यों का संकलन किया गया है। केवल प्रतिनिधि कवि की रचनाओं को ही संगृहीत किया गया है। कलेवर की मेदोवृद्धि के भय से अन्य कलाकारों की कृतियों को नहीं लिया गया है। संकलनकर्त्ता उन सभी कवियों का हृदय से आभारी है जिनकी रचनाओं को इस संकलन में संगृहीत किया गया है।

इस संकलन की भूमिका में अनुशीलन के सूत्र भी आकलित किये गये हैं। उसमें पृथक् काव्य-विधाओं के लक्षण व विकास परम्परा देकर संकलित कवियों का काव्यात्मक व्यक्तित्व, उनके काव्य की विशेषता तथा प्रस्तुत काव्यांश पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। अधिक वाद-विवाद से तटस्थ होकर भी छायावाद, प्रगतिवाद व प्रयोगवाद पर प्रासंगिक प्रकाश डाला गया है।

इस संकलन में भी त्रुटियाँ व न्यूनताएँ हो सकती हैं पर विज्ञजनों की गुण-ग्राहिता उनको क्षमा करेगी। आशा है प्रस्तुत संकलन नवीन धाराओं में छात्रों की रुचि उत्पन्न करने में योग देगा।

विष्णुराम नागर

काव्य-संचय

के

अनुशीलन सूत्र

जिस प्रकार साहित्य की परिभाषा विद्वानों ने विविध प्रकार से निरूपित की है उसी प्रकार काव्य की परिभाषा के विषय में भी मतैक्य नहीं है। साहित्य को विश्व-ज्ञान का संचित कोष कहा गया है। कहीं साहित्य जीवन की मूल व्याख्या माना गया है। साहित्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ ज्ञान-सामग्य के साथ २ लोक-कल्याणमूलक गिना जाता है।

साहित्य — साहित्य जीवन के किसी सत्य का सुन्दर उद्घाटन कर लोक-मंगल का विधान करता है।

इसमें साहित्य के तीन मूल उपकरण गिने गये हैं—सत्य शिव सुन्दरम्। आधुनिक आलोचक व विचारक साहित्य और काव्य में भेद नहीं गिनते हैं, पर फिर भी साहित्य में विश्व-ज्ञान की व्यापकता के कारण अतिव्याप्ति रहती है। जीवन-सबद्ध किसी प्रकार के ज्ञान का साहित्य बन सकता है, पर उसे काव्य कोटि में अनिवार्यतः नहीं लाया जा सकता। साहित्य में विचार, विवेचना तथा विषय-विश्लेषण प्रधान होता है, पर काव्य में रागात्मकता, भावुकता तथा सरसता का होना अनिवार्य होता है। साहित्य चिन्तन-प्रसूत होने के कारण बुद्धिपरक होता है, पर काव्य मार्मिक अनुभूति-जन्य होने से हृदयस्पर्शी होता है।

सामान्य साहित्य-स्रष्टा के [illegible] अनिवार्य होता है। यदि एक [illegible] दर्पण माने तो कविहृदय को [illegible] केवल प्रकाश

की संप्राप्ति और प्रतिबिंबन होता है । पर काव्य में हमें प्रकाश का प्रतिफलन भी मिलता है । पर विचारक विस्तृत जगत् व जीवन से कुछ ज्ञान व विचारों का चयन करता है, उसे समाज के सामने व्यवस्थित रूप से रखता है ।

काव्य

एक कवि अपनी मर्म-स्पर्शिनी नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से तथ्य ग्रहण कर अपना भाव-तादात्म्य स्थापित कर उसे नये प्रभावशाली रूप से प्रतिफलित करता है । कवि-हृदय विश्व-हृदय बन जाता है । उसके अपने भाव व अनुभव विश्व-अनुभव में परिवर्तित हो जाते हैं । यही भावों की तादात्म्य परिणति काव्य में रस-विधायिनी होती है ।

काव्य की परिभाषा

साहित्यशास्त्रियों ने काव्य की परिभाषा भी अनेक प्रकार से दी है । भवभूति ने काव्य को आत्मा की अमर कला कहा है । आत्मतत्व की तीन विभूतियों—अनुभूति, सहानुभूति व अभिव्यक्ति—का चरम विकास ही काव्योत्कर्ष है, आत्म-साक्षात्कार का सोपान है । संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य मम्मट ने इसे एक व्यवस्थित रूप में रखा है । दोष-रहित व गुण-सहित शब्दार्थ काव्य होता है । अलंकार-विधान काव्य में चमत्कृति का सायोग देकर उसे उत्कृष्ट बना सकता है । कई आचार्य काव्य में रस को प्रधान मान कर उसे 'वाक्य रसात्मक काव्य' की परिधि में बाँधते हैं, पर 'रस' स्वय चरम लक्ष्य नही । यह भी लोकोत्तर आनन्द-विधान का एक उपकरण है, अत काव्य लोकोत्तर ब्रह्मानन्द-सहोदर आनन्द को सृजन करने वाला तत्व है । विश्वनाथ की यह रसपरक परिभाषा प्राय· सर्वसम्मत है क्योंकि इसमें रागात्मक तत्व प्रधानता से स्वीकार किया गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कविता की परिभाषा देते हुए लिखते हैं, "जिस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारो का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है" वह काव्य है । काव्य वस्तुतः मानव के हृदय को लौकिक राग-द्वेष की सकीर्णता से मुक्त करके शेष सत्ता से तादात्म्य स्थापित करवाता है । इसी को शुक्लजी ने भाव-योग की सज्ञा

देकर उसे ज्ञान-योग के समकक्ष रखा है। किसी काव्य की रस-प्रवणता से ही यह भाव-योग स्थापित हो सकता है। अतः संस्कृत में रस-सिद्ध कवीश्वरों का जय-घोष सुनाई देता है जो आत्मा को इस नश्वर जगत् में शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित करते हैं।

काव्य का प्रयोजन

काव्य-सृजन कई बातों को लक्ष्य में रख कर किया जाता है। कई यशोलिप्सा से, कई अर्थोपार्जन के लिए, कई लोक-ज्ञान व व्यवहार में दक्षता प्रदान करने के लिए, कई अनिष्ट-निवारण व इष्ट-प्राप्ति के लिए काव्य-प्रणयन करते हैं। पर इनसे बड़ा ऊँचा काव्य का लक्ष्य है कान्तासम्मित मृदु-सरसवाणी में शिक्षा को सवेदित कर सद्यःपरनिर्वृति तक पाठक के मानस को पहुँचा देना। महाकवि तुलसीदास ने इसे 'स्वान्तः सुखाय' कहा है। पर कवि-हृदय विश्व-हृदय होता है, अतः उनका स्वान्तः सुखाय विश्वसुखाय में परिणत हो जाता है। काव्य का उद्देश्य, जैसा ऊपर वर्णित किया गया है, भाव परिष्कार कर शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर भाव-योग की लोकोत्तर आनन्द-विधायिनी अनुभूति का आस्वाद मानव को करवाना ही है। आज की कृत्रिम सभ्यता के युग में जब मानव के अर्थ-काम मूलक मनोवेगों का उद्दाम प्रभाव व प्रसार तीव्र रहा है काव्य का दायित्व अधिक बढ़ गया है। कविता इस कृत्रिम सभ्यता के आवरणों को हटा कर मनोभावों का मौलिक स्वरूप में सहृदय संवेद्य करवाकर उसे मानवता की सामान्य भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित करे तभी उसकी सार्थकता स्वीकृत हो सकती है। एक प्रसिद्ध आलोचक की उक्ति है "जब विज्ञान का विकास युग आता है तो कविता का ह्रास हो जाता है।" अतः इस वैज्ञानिक युग में कवि-कर्म का उत्तरदायित्व बढ़ना स्वाभाविक है।

काव्य का आत्मतत्व तो रस ही है, पर अभिव्यंजना की शैली-भेद से उसके दो प्रधान भेद माने गये हैं। काव्यानन्द का ग्रहण दो प्रधान इन्द्रियों से होता है—दृश्य तथा श्रव्य। इन्हीं दो विभिन्न ग्राहक तत्वों से काव्य की दो प्रधान विधाएँ गिनी जाती हैं—दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। इन दोनों विधाओं

मे दृश्य काव्य को प्राधान्य दिया गया है क्योकि उसमें प्रत्यक्षानुभूति की प्रतीति होती है। किसी घटना के प्रत्यक्ष देखने और सुनने मे जो प्रभाव का भेद होता है वही इसमे है, अतः सस्कृत साहित्य में 'काव्येषु नाटक रम्य' यह प्रसिद्ध है। दृश्य काव्य मे भिन्न रुचि-सस्कार सपन्न व्यक्ति का भी समाराधन सरलता से हो सकता है। श्रव्य काव्य में रसानुभूति प्राप्त करना उतना सरल नही है, उसमे सहृदयता की प्राथमिक योग्यता की अपेक्षा पडती है। श्रव्य काव्य की भी कुछ उत्कर्ष कोटियाँ हैं जिनका सूक्ष्म सकेत यहाँ अप्रासगिक न होगा। जिस कला के उपकरणो में भौतिक स्थूलता का आधार जितना ही न्यून होगा, वही कला उतनी ही प्रशस्त व उत्कृष्ट गिनी जाती है। श्रव्य काव्य का मूल भौतिक आधार शब्द है। जिस काव्य मे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म शब्द-सकेतो से अधिक-से-अधिक भाव-व्यंजना हो वही काव्य उत्कृष्ट कोटि का होता है। वही कविता-कामिनी साहित्य-क्षेत्र मे सर्वमान्य होती है जो पुलकों की सिहरन अथवा कपोलों की लज्जारुण रेखा से अपना अभीष्ट सकेत दे दे। यही सूक्ष्म-संकेतात्मक भाव-प्रकाशन अभिव्यजना व ध्वनि से पूर्ण होता है। अत जो काव्य अभिधा की स्थूल आधार शिला छोड कर लक्षणा व व्यजना पर आधृत होकर अभिव्यक्त होता है वही मानव के सुसस्कृत मानस पर अभीष्ट प्रभाव डालता है। लेकिन इस प्रकार के काव्य-मर्मो के सवेदन के लिए ग्राहक-प्रतिभा अर्थात् सहृदयशीलता आवश्यक होती है, अन्यथा "अरसिकस्य कवित्व निवेदन" का दुर्दण्ड कवि को भोगना पड़ता है।

काव्य-भेद

इस पद्यात्मक श्रव्य काव्य के रचना-शिल्प के कारण प्रबन्ध और मुक्तक के दो भेद होते हैं। प्रबन्ध काव्य में कथानक की आद्यन्त अविच्छिन्न क्रमिक विकसित धारा होती है। इसमे सुगठित, सुसबद्ध, सश्लिष्ट कथावस्तु का एक पूर्ण घटक होता है जो भिन्न-भिन्न सर्ग-अध्याय व परिच्छेदो मे विभाजित हो। इससे भिन्न मुक्तक काव्य होता है जिसमें प्रत्येक छद व श्लोक किसी कथा का पूर्वापर क्रम-निर्वाह नहीं

श्रव्य काव्य के भेद

करना पर स्वयं किसी भाव, प्रसंग अथवा परिस्थिति का एक चित्र उपस्थित करना है जो स्वयं में पूर्ण होता है। इनमें अंगांगिभाव जैसा कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनों ही उस एक काव्यतत्व की भिन्न सत्ताएँ हैं जिसमें आकृति-भेद के साथ-साथ प्रकृति-भेद भी है। प्रबंध काव्य के रसास्वादन के लिए आद्यन्त पठन या श्रवण अपेक्षित है पर मुक्तक में वही या कोई पद्य-श्लोक अथवा दोहा मानस में, सुनते ही सरसता का संचार करता है। इसका रसास्वादन पूर्वापर प्रसंग पर अपेक्षित नहीं रहता। कथानक के विस्तार व संकोच के आधार पर प्रबन्ध काव्य के पुनः दो भेद किये गये हैं।

प्रबंध काव्य के दो प्रधान भेद हैं —महाकाव्य और खंडकाव्य। जिस काव्य में जीवन की विविधता और व्यापकता का सांगोपांग मार्मिक चित्रण हो वह महाकाव्य, तथा जिसमें केवल किसी एक घटना या अनुभूति का सरस वर्णन हो वह खंडकाव्य। यहाँ पर भी केवल आकार का गुरुत्व लाघव ही इस भेद की विभाजक रेखा नहीं है, पर दोनों में अपनी विशेषताएँ हैं। मानव-जीवन की यथासंभव पूर्णतम प्रतिकृति उपस्थित करना महाकवि का लक्ष्य रहता है, पर जीवन की किसी विशेष घटना व मनोदशा का पूर्ण चित्रण देना खंडकाव्य में संभव हो सकता है। गद्य शैली में लिखी कहानी व उपन्यास में जो तात्त्विक अन्तर होता है वही खंडकाव्य और महाकाव्य में है।

प्रबंध काव्य के भेद

इसी प्रकार मुक्तक-काव्य के भी दो भेद हैं — गेय-मुक्तक (गीति-काव्य) और पाठ्य-मुक्तक। जिन मुक्तकों को गीति शैली में गाया जाय, जिनमें भावना व आत्मानुभूति अधिक हो, वे गीति-काव्य की कोटि में आयेंगे पर जिनमें नाद सौंदर्य तो हो पर अ[illegible]यता अपेक्षित न हो वे पाठ्य-मुक्तक की कोटि में हैं। [illegible]र-सौन्दर्य के लिए भले हों पर पाठ्य-मुक्तक [illegible] [illegible]सकते हैं और

प्रधान तथा भाव-प्रधान दो भेद निरूपित हुए हैं। जो काव्य वाह्यार्थ निरूपक हो, स्थूल घटनाओ के विशद वर्णन मे विशेष प्रवृत्त हो, घटनाओं के वाह्य संघर्ष को प्राधान्य देते हो वे विषय-प्रधान होते हैं। जिनमें कवि की आत्मानुभूति प्रधानता से मुखरित हो जहाँ कवि की व्यक्तिगत भावना विश्व-भावना को अपने मे तिरोहित कर लेती हो वे आत्मपरक अथवा भाव-प्रधान होते हैं। विषय-परक काव्य मे विश्व के घात-संघातो, वाह्य द्वंद्वों व संघर्षो का आत्म-निरपेक्ष वस्तु-निरूपक वर्णन होता है। आत्मनिष्ठ, भाव-परक काव्य मे सूक्ष्म सर्व-संवेद्य संवेदनाओ का अन्तर्द्वंद्व आत्मानुभूति के रूप मे चित्रित होता हैं।

महाकाव्य के लक्षण

मानव जीवन की सघन विशद अनुभूतियो को अपने आँचल में समेट कर एक उदात्त भव्य संस्कारशील चित्र उपस्थित करना महाकाव्य का अभिप्रेत विषय होता है। एक युग-पुरुष के जीवन-वृत्त का आधार लेकर उसमे मानव जीवन की मूल समस्याओ का समावेश कर उसे रमणीय सरस शैली मे प्रस्तुत करके मानवता के आदर्श की प्रतिष्ठा कर जन-जीवन को उदात्त बनाना महाकाव्य-कार का लक्ष्य होता है। युग-निर्माता व्यक्तित्व के निरूपण में ही यह संभव हो सकता है। इसके तीन प्रधान उपकरण होते हैं—वस्तु, पात्र, रस। पाश्चात्य आलोचना पद्धति के अन्य तीन उपकरणो—देश-काल, शैली, उद्देश्य—का इसी मे समावेश कर लिया गया हैं। संस्कृत साहित्य-शास्त्र में इसके विविध लक्षण हैं, जिनमे कुछ सामान्य लक्षण ये है —

इतिहास-पुराण प्रथित या कल्पित कथानक, जो जीवन संघर्ष का सम्पूर्ण चित्र उपस्थित करे, इसका आधार होता हैं। नायक देवता-राजादि अभि-जात वर्ग का कुलीन होना चाहिए। महाकाव्य को सर्ग-बद्ध होना चाहिए। कम-से-कम आठ सर्ग, अधिक की कोई सीमा नही है। श्रव्य-वृत्तो वाले व सु-संधित सर्ग अति विस्तृत न हो। महाकाव्य का उपक्रम आशीर्वाद, स्तुति अथवा वस्तु-निर्देशात्मक हो। उपसंहार भी उसी प्रकार शालीन व भद्र

[illegible] । [illegible] का वर्णन विस्तृत हो। नगर, सागर, [illegible] ऋतु, [illegible] का वर्णन हो। महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, [illegible] पुरुषार्थों की प्राप्ति में निहित हो। वृत्तान्तों में [illegible] पुनरावर्तित न हों। समस्त वर्णन रस-भाव-निरन्तर हो। [illegible] हो। अन्त में कथावस्तु सूचक सर्ग-परिवर्तन हो। [illegible] रस-परिपाक [illegible] अपेक्षित है पर शृंगार, वीर व करुण [illegible] अंगी के रूप में हो। अन्य रस अंग के रूप में आ सकते हैं। इसका नामकरण वस्तु, [illegible] अथवा कवि के नाम पर होना चाहिए।

पाश्चात्य आलोचकों ने महाकाव्य के विषय में दो-चार बातों की ओर संकेत किया है। घटना पौराणिक या ऐतिहासिक प्रसिद्ध हो। वस्तु महत्त्वसूचक, पात्र असाधारण व शौर्य-औदार्य गुणयुक्त, घटना जातीय आदर्शों व भावनाओं को प्रभावित करने वाली हो। कवि कलात्मक अभिव्यंजना से मानवता की युगबद्ध दार्शनिक व्याख्या कर, प्रासंगिक कथाओं से मूल-कथा की पुष्टि और वृद्धि करे।

महाकाव्यों की भारतीय परम्परा से भी सूक्ष्म परिचय होना आवश्यक है। हमारे यहाँ के आदि कवि वाल्मीकि हैं और उनका काव्य 'रामायण' आदिकाव्य गिना जाता है। इसी लक्ष्य ग्रंथ की विशेषताओं का आकलन कर आचार्यों ने लक्षण ग्रंथों की महाकाव्य की परिभाषा का निरूपण किया है। मानव की अन्तर्भावना, उदात्त कल्पना, गहन जीवन-दर्शन की उद्भावना, रसोद्रेक तथा अलंकृत पद्य-पटुता सभी का संतुलित समावेश इस क्रान्तदर्शी कवि ने किया है। क्रौंचवध का शोक श्लोक में फूट पड़ा। कवि-हृदय करुण निर्झरिणी में बहने लगा। त्रेता युग का जीवन-दर्शन इसमें विद्यमान है। द्वापर युग के युग-प्रवर्तक कृष्ण को केन्द्र मान कर 'महाभारत' की रचना हुई। [illegible] के अति-

अब केवल शृंगार प्रेम में ही वाणी-विलास न कर सेवा, भक्ति, देशप्रेम, आदि उदात्त भावनाओ मे भी कवि-हृदय मुखरित हुआ। इसमे नवीन विचार भावना व प्रेरणा का ही समाहार किया गया पर अभिव्यक्ति का स्वरूप, कला-शिल्प रीतिकालीन ही बना रहा। वही भाषा, कल्पना, छद, अलकार—समस्त रूप-विधान *पुरातन ही था*। पुरातन पात्र मे नवीन भाव-मधु इस काल का सामान्य आग्रह रहा।

नवीन धारा

इस सक्रान्ति युग की अव्यवस्थित परिस्थिति में यह नूतन-पुरातन का सम्मिश्रण व सतुलन आवश्यक था। फिर भी तत्कालीन रूप-विधान व कला-शिल्प में—भावानुभूति के सौहार्द के कारण—प्रवाह व प्रभाव पर्याप्त मात्रा में बना रहा। गद्यवत् नीरस-पद्य भी सामयिक सदेश का वाहन होने के कारण जन-मानस द्वारा ससम्मान सग्रहीत हुआ। अन्तर के भावोद्‌गार प्रचार साहित्य बनकर भी जनता का मार्ग-प्रदर्शन करने लगे। वास्तव मे यह युग आन्दोलन, उद्‌बोधन, मनोमथन, विचार-सघर्ष का था, अत इस प्रवृत्ति को लेकर, विरचित काव्यों में शास्त्रीय—आभिजात्य रुचि (Classical Taste) ढूढना निराशा मात्र ही रहेगी। यह युग गद्य-साहित्य का था, परन्तु पद्य की ओर परम्परा से जनरुचि अधिक होने से—उसका ग्रहण किया गया। अधिक कविताएँ इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक तथा सुधारवादी होती थी पर रीतिकालीन रुचि की भग्नावशेष स्मृतियाँ—शृगार व प्रेम की रागिनियाँ—कभी-कभी सुनाई देती थी। उनमें सरसता, भावप्रवणता लक्षित होती थी। फिर भी कवियो मे नग्न यथार्थता की विषमता, कटुता व विद्रूपता के प्रति सवेदना व सहानुभूति थी। इसके साथ ही अग्रेजी सभ्यता के विषाक्त प्रभाव से शिक्षितो को बचाने के लिए प्राचीन भारतीय सस्कृति व सभ्यता के प्रति सम्मान व विश्वास उत्पन्न करवाने की चेष्टा भी इन कवियो ने की। साहित्य में प्रेय के स्थान पर श्रेय की महत्ता स्वीकार की गई। काव्य मे यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ मानवतावाद की प्रतिष्ठा भी हुई। सबसे बड़ी बात जो उत्थान के इस चरण मे हुई वह थी—

जन-जीवन से वियुक्त साहित्य को फिर से जन-संपर्क में लाना। समाज के सर्वांगीण स्तर से संवेदनशील परिचय लेकर रागात्मिकावृत्ति से तादात्म्य स्थापित कर साहित्य-सृजन होने लगा। 'सत्य-शिव-सुन्दर' की त्रिपुटी को नये संदर्भ में स्वीकार किया गया। देश-प्रेम व राष्ट्रीयता की भावना को तत्कालीन कवियों ने विशेष रूप से मुखरित किया। साहित्य सत्य स्वरूप, जन-आदर्शों का दीप-स्तंभ बना। द्विवेदी-युग के उत्थान-चरण ने इन सामान्य प्रचलित प्रवृत्तियों को विशेष संघटित स्वरूप प्रदान कर भाव-संस्कार के साथ भाषा-संस्कार का दायित्व भी वहन किया।

भारतेन्दु ने एक साहित्यिक मंडल स्थापित किया जिसके स्नायुकेन्द्र वे स्वयं हुए। जब लोगों के सामने इतना विशाल भावक्षेत्र बिखरा दिखाई दिया तो भिन्न रुचि वाले साहित्यिक मंडल ने इस समाज व राष्ट्र के उत्थान कार्य को अपने हाथों में लिया। काव्य-क्षेत्र की जितनी शैलियाँ व विधाएँ थीं—उन सबमें साहित्य-सृजन होने लगा। गद्य का स्वरूप व्याकृत व स्थिर होने से नाटक, उपन्यास, कहानी, लेख, भाषण आदि की खूब वृद्धि हुई। उसमें तत्कालीन जीवन-परिस्थितियों व समस्याओं पर प्रकाश पड़ता था। समस्त नवीन रचनाओं में क्रांति का घोष होना, शोषित वर्ग का हृदयद्रावी चित्र देकर जन-संवेदना तथा शासकवर्ग के उत्पीड़न व शोषण को चित्रित कर जन-विक्षोभ को तीव्र करना इसका लक्ष्य होता था। कविता के क्षेत्र में भी रीतिकालीन मुक्तक, गीतात्मक शैली का विशेष आग्रह रहा। इनमें बंगाल के कवीन्द्र रवीन्द्र और अंग्रेजी के छायावाद—स्वच्छंदतावाद का प्रभाव पड़ा। द्विवेदी काल भाषा-संस्कार के आदर्श को लेकर प्रारम्भ हुआ। ब्रज-भाषा को ही काव्य का एकमात्र माध्यम न मानकर खड़ीबोली को काव्यानुरूप सौष्ठव, माधुर्य व लालित्य प्रदान हुआ। इस काल में खंड काव्य, मुक्तक, गीत आदि का प्रचलन शीघ्रता से हुआ। कलाशिल्प के क्षेत्र में नवीन प्रयोग व परीक्षण हो रहे थे। भावों का एक आदर्श वाहन खोजा जा रहा था। अतः नाना प्रकार की शैलियों—विधाओं, भाषा, छंद, अलंकारों का आयोजन होने लगा। इसी अनुसंधानात्मक प्रयोग व परीक्षण को प्रधानता से अपनाने

वाले श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय थे। अभिव्यंजना की शैली की कई विविध सरणियाँ इनके काव्यों में मिलती है।

हरिऔध की साहित्य साधना अपना विशेष महत्व रखती है। इनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर कई युगों का प्रभाव पड़ा। अतः प्रवृत्तियों के उत्थान-पतन के हिन्दोल में झूलता हुआ इनका विकास आगे बढ़ा। इनकी रचनाओं में गद्य-पद्य, मौलिक-अनूदित, खंडकाव्य-महाकाव्य, उपन्यास-आलोचना, नूतन-पुरातन सबका समावेश मिलता है। शैलियों मे संस्कृतमय वर्णवृत्त पदावली, उर्दू बहों की चौपदों की शैली, खड़ीबोली के काव्य, ब्रजभाषा की रचनाएँ सभी सम्मिलित हैं। इनके काव्यात्मक मानस पर रीतिकालीन काव्य-प्रेरणा का भी प्रभाव है, द्विवेदीयुग की सुधारवादी दृष्टि भी है तथा आधुनिक युग का बौद्धिक आग्रह भी है। इनका समस्त साहित्य तत्कालीन समाज की समस्त समस्याओं, चेतनाओं तथा प्रवृत्तियों का संकलन इतिवृत्त है। इन समस्त मान्यताओं व जीवनादर्शों को अपनी आर्द्र भावना तथा भावुक कल्पना से व्यक्तित्व में डुबा कर अपनी प्रौढ़ प्रतिभा से काव्यात्मक रूप प्रदान किया है। भाषा में नाना प्रयोग करके प्रमाणित कर दिया है कि कोई भी भाषा गहन से गहन-भावों का गर्भ धारण करने में समर्थ होती है। हिन्दी को वर्तमान भाव-गहन क्षमता प्रदान करने में इनका बड़ा योग है। नवीन छंदों के विधान से सूक्तियों का प्रयोग कर उर्दू-संस्कृत तथा देशीय शब्दों का समाहार कर भाषा के शब्द-कोष को विस्तृत किया।

हरिऔध

आधुनिक काल का सर्वप्रथम महाकाव्य हरिऔध प्रणीत 'प्रियप्रवास' है। कृष्ण-काव्य परम्परा में महाकाव्य का अभाव प्रायः खटकने वाली बात थी। पूर्ववर्ती कवियों ने कृष्ण के धर्माभ्युत्थानकारी लोकरक्षक व्यक्तित्व पर ध्यान नहीं दिया। इस महाकवि की सूक्ष्म संवेदनशील भावना व उदात्त कल्पना

प्रियप्रवास

[illegible] के [illegible] प्रतिष्ठा [illegible] और उसे [illegible]
[illegible] का [illegible] प्रदान किया। वर्तमान युग के वैभव व दैन्य
[illegible] में [illegible] किया। इस राधा-कृष्ण के प्रेम-वर्णन
[illegible] का [illegible] नवीन भूमिका के
रूप में प्रस्तुत किया। इस [illegible] का कथानक [illegible] ही है—कंस के
निमन्त्रण पर [illegible] को छोड़कर कृष्ण मथुरा
प्रस्थान करते हैं। उनके प्रस्थान पर शैशव के संगी-साथी नंद-यशोदा का
करुण विलाप [illegible] की [illegible] बाल-लीला-[illegible] के मानस-
प्रतिबिम्ब [illegible]। इसमें सर्वाधिक [illegible]-हृदय है 'राधा'। शैशव
का निरन्तर परिचय [illegible] से प्रेम में परिणत हो जाता है। वह इस
नवीन जीवन-क्रम से [illegible] भी न कर पाई कि विरह-वियोग का व्यथा-
भार हृदय का आधार बन गया है। कवि की भावना बौद्धिक भावना ने
इस विरहिणी [illegible]-प्रेम-साधना में रत राधा का [illegible] व्यक्तित्व
दिया है। कृष्ण के सान्त्वना-संदेश का लेकर आने वाले उद्धव के सामने यह
विरहिणी विरह-सागर की गहन-सीप से [illegible] इस समस्या का बौद्धिक
समाधान देती है। उसकी धारणा है कि संयोग-सुख प्रेम को कुण्ठित कुत्सित
व संकीर्ण करने वाला है। एकान्त अनुरक्ति व्यक्तित्व को भोग में जकड़
देती है। वियोग से प्रेम-भावना विश्वव्यापिनी हो जाती है। वह अपने प्रियतम
को विश्व के अणु-परमाणु में विलीन देखती है तथा उसे ढूंढने के लिए कण-कण
से स्निग्ध सौहार्द स्थापित करती है। रागिणी राधिका आत्म-साधिका बनती
है, फिर अन्त में लोक-सेविका में परिणत हो जाती है। व्यक्ति की संकीर्ण
भावनाओं का यह निर्वैयक्तिक उदात्तीकरण युग-भावना का परिणाम है।
सच्चा प्रेम लोक-सेवा-निष्ठ होना चाहिए। इस महाकाव्य के अन्य विशेष
उपादान निम्न हैं—सत्रह सर्गात्मक 'प्रियप्रवास' का कथानक पौराणिक है।
नायक धीरोदात्त है, पर नायिका का व्यक्तित्व प्रमुख है। सर्ग प्राय परस्पर
संबद्ध हैं, छन्दों के विधान का पूर्ण पालन नहीं हुआ है, वात्सल्य व करुण
अंगी रूप से है। वर्ण्य विषयों का वैविध्य अच्छा निर्वाहित हुआ है।

प्रकृति-चित्रण पूर्ण विशदता तथा विदग्धता से हुआ है। एक नवीन जीवनादर्श 'लोक-सेवा' की स्थापना हुई है। यह शास्त्रीय मर्यादा की दृष्टि से महाकाव्य है। 'प्रिय प्रवास' का

वस्तु-विधान

प्रासाद विरह-विषाद की नीव पर खड़ा है। इसमें प्रवासी प्रियतम की अतीत स्मृति में गोपियो की विरहाकुल वेदना, कही मातृ-हृदय की वात्सल्य भरी घुटन, कही वृद्ध पिता का आकुल कंठावरोध! राधा इस काव्य की कमनीय करुण-मूर्ति है। त्याग, तप साधना को अवशिष्ट जीवन का पाथेय बनाकर विश्व-कल्याण म योग देकर प्रियतम को जन-सेवा में प्रत्यक्ष कर लेती है। इसमें कृष्ण का भी लोक-सेवा रूप सँवारने का प्रयास किया गया है। इन्द्रकोप से व्रज-रक्षा करने के लिए जिस गोवर्धन-धारण के अलौकिक तत्त्व की आयोजना हुई थी उसका बौद्धिक समाधान दिया है। इस काव्य का कथानक सपूर्ण जीवन को समाविष्ट करने वाला नही है। इससे खडकाव्य का निर्माण अच्छा हो पाता, पर हरिऔधजी ने इस अभाव की पूर्ति नाना वृत्तो के सघटन व सकलन से करली है। प्रबंधात्मक एकसूत्रता के निर्वाह में बाधा होती है। चरित्र-चित्रण भी कृष्ण, राधा व यशोदा का हुआ है। कृष्ण ने जीवन का प्रारंभ प्रेम से किया, पर लोक-सेवी कर्त्तव्यपरायण भाव शीघ्र ही प्रादुर्भूत हुआ। कर्त्तव्य व प्रेम मे सघर्ष हुआ तथा लोक-रक्षण तत्व की विजय हुई। यशोदा मे मातृ-हृदय की ममता, विछोह का करुण क्रन्दन, दुर्दैव का आक्रोश तथा उपालभ—सभी प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रतीक है। नेह भरा आंचल व अश्रुपूर पलके—यही उसकी निधि है। उसकी वेदना मे भारतीय मातृ-हृदय सिसकता सुनाई देता है। राधा इस प्रवास-कानन में विरह-वृन्त पर लटकी कुसुम-कली है जो खिलने से पूर्व ही मुरझा गई है। समस्त कार्य-कलापो की केन्द्रबिन्दु बनी हुई राधा अपने वातावरण को एक म्लान-सुमन का विपण्ण सौरभ प्रदान कर रही है। अपनी आत्मा में प्रणय की दीपशिखा जलाकर उससे निर्गत .. .८० को पीती हुई लोक-हित के आदर्श को आलोकित करती जा रही

है। लोक-साधना को वह परलोक-साधना से भी उत्तम समझती है। इस काव्य की आत्मा राधा है, उसी के आलोक से समस्त कथानक कमनीय बन गया है। समस्त काव्य करुण-स्रोत बना हुआ है। प्रेम का संयोगात्मक चित्र कहीं-कहीं है। विरह से ही कथानक का ताना-बाना, पात्रों का व्यक्तित्व, प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण तथा वातावरण की सृष्टि हुई है। इस काव्य के विरह में आध्यात्मिक पुनीतता अधिक है, केवल ऐहिक भोग-लिप्सा की वृत्ति नहीं। 'मेघदूत' के समान राधा ने पवन-दूत भेजकर प्रियतम का संदेश मँगाया है। यह विरहिणी के संतप्त हृदय का संदेश है जो कर्त्तव्य में मग्न प्रियतम के पास भेजा गया है। इस काव्य में प्रकृति-चित्रण भी कई शैलियों में हुआ है—कहीं शुद्ध सात्विक आलंबन के रूप में, कहीं रीति-कालीन प्रवृत्ति के समान उद्दीपन रूप में, कहीं उस विराट् भावना से उत्प्राणित एक चेतन सत्ता के रूप में। संस्कृत वर्णवृत्तों में संस्कृत शैली के शुद्ध सौन्दर्य निरूपण इसमें प्रभूत हैं। पर समस्त प्रकृति भी विरहिणी राधा, वियुक्त गोपी-गोप, बिछुड़ी माता के निःश्वासों से मेघाच्छन्न दुर्दिन के समान धूमिल, विषाद की प्रतिमूर्ति ही अधिक दिखाई देती है।

इस विशद भाव-पक्ष से संपन्न इस काव्य का कला-शिल्प भी इतना ही भव्य है। हरिऔध की भाषा इतनी भाव-प्रवण, सशक्त व प्रवाहपूर्ण है कि उसमें अलंकार स्वतः आ जाते हैं। काव्य-सौंदर्य के उत्कर्ष के लिये अलंकारों का विधान हुआ है। चमत्कार-प्रदर्शन की कौतुक वृत्ति उनमें नहीं है। शब्द व अर्थमूलक अलंकारों का प्रयोग रसानुकूलता व भाव-तीव्रता के लिए किया गया है। रस-कौशल की चर्चा ऊपर हो चुकी है। छन्द-योजना में तो उपाध्यायजी पूर्ण दक्ष हैं। इस क्षेत्र में इन्होंने कितने ही नूतन प्रयोग भी किये हैं। संस्कृत वर्ण-वृत्तों में सरलता, सरसता व स्वाभाविकता है। इससे अतीत की काव्य रचि का आदर्श भी उपस्थित हुआ है। संस्कृत वृत्त अतुकान्त हैं—जो कि अंग्रेजी की कविता (blank-verse) से भी साम्य रखते हैं। अतः छाया-

शिल्प-शैली

वादी युग की अनुकान्त शैली को हिन्दी मे प्रस्तुत करने वाले हरिऔधजी हैं। कविता का भावमाधुर्य अत्यानुप्रास की योजना पर आश्रित नही।

अब इनकी काव्यात्मक शैली भी देखनी चाहिए। शैली किसी लेखक का व्यक्तित्व है। उसका स्वभाव, चरित्र, सस्कृति-शिक्षा, धर्म, दर्शन जिस प्रकार का है उसी प्रकार के भावो की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति वह करेगा। इनकी शैली स्वत प्रादुर्भूत हुई है, किसी आदर्श के अनुकरण और अनुशीलन से निर्मित नही हुई। प्रत्येक ग्रथ प्राय पृथक् शैली में लिखा गया क्योकि इनका व्यक्तित्व भी कई प्रकार के सस्कारो से सपन्न था। कही उर्दू फारसी की बहॉ वाली शैली, कही तत्सम समासबहुला, कही रीतिकालीन अलकारो से लदी बोझिल शैली, कही आधुनिक काव्य की सुबोध व सरल शैली। विषयानुरूप नवीन विधानो से शैली का निर्माण किया। वैसे तो शैली मे स्वाभाविकता है पर जहाँ सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ व मुहावरो का प्रयोग हुआ है वहाँ रसार्द्रता होते हुए भी प्रयत्नसापेक्ष स्वरूप दीखता है। परन्तु ये तत्व भाषा की आत्मा मे निमग्न हो गये हैं। उनका विशाल शब्द-कोष शब्द-चयन व वाक्य-सयोजन मे बडा सहायक सिद्ध हुआ है। समस्त शैली का आग्रह कही इतना बढ गया है कि सपूर्ण पद्य में सयोजक अव्ययो या धातु के अतिरिक्त सारी सस्कृत पदावली है। 'रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिबानना' इसका निदर्शन है। शैली की इतनी विविधता का कारण है कि वे भाषा के पूर्ण पारगत हैं। प्रत्येक शब्द की प्रकृति और आत्मा से उनका परिचय है। भाषा उनके इगित पर नाचती है; उनकी वशवदा सहधर्मिणी है। ब्रजभाषा, उर्दू, सस्कृत, खडीबोली, पुरानी बोली—सब के वे माहिर हैं। 'वैदेही वनवास' मे भाषा का वर्तमान आदर्श प्रतिष्ठित हुआ है। 'प्रियप्रवास' की भाषा रस-भाव-छन्द की दृष्टि से औचित्यपूर्ण ही मानी जायगी।

का प्रस्तुताश 'कृष्ण-सदेश' सोलहवें सर्ग से सकलित है।
के उपसहार की भाव-तीव्रता व रसोद्रेक अपने चरम उत्थान पर
। सुधी उद्धव कृष्ण का सात्वन-सदेश लेकर राधा के पास आये हैं।

[illegible] कृष्ण की [illegible] है ।
[illegible] होते हैं [illegible] भक्ति से परमात्म-पूजा का संकेत करते
हैं । [illegible] अनुराग को विश्व-प्रेम में परिवर्तन
करने का [illegible] है । [illegible] हुआ विवेकशील
[illegible] है । [illegible] उनके जीवन
का [illegible] है । [illegible] वृत्तियों को बौद्धिक आधार देकर उसे
[illegible] में परिवर्तित करती है । [illegible] भक्ति का बौद्धिक निरूपण हो
[illegible] की अर्चना में पर्यवसित होता है । मोह व प्रेम
का [illegible] उमड़ता है । मोह व ममता की मूर्ति नारी—प्रेम का
विश्व-प्रेम का आदर्श अपनाती है । प्रिय में परमेश का प्रत्यक्ष कर लेती
है —"[illegible] प्रिय की परमेश की परम-पावन भक्ति अभिन्न है ।" उन्नत
[illegible] में व्यथा-भार की [illegible] से अपने उर की पीड़ा के स्मरण को
दबा दिया । राधा उद्धव से अनुनयपूर्ण प्रार्थना करती है कि यदि
प्रिय कृष्ण की कोई कष्टप्रद बाधा न हो तो जननी-जनक को एक बार
सँभाल जायें ।

इस प्रसंग में यथानरूप आदर्श को मूर्तिमान करने का प्रयास है । पौराणिक साम्प्रदायिक सगुण भक्ति का बुद्धिसम्मत दर्शन स्थापित करके भारतीयों को देशसेवा का उद्बोधन दिया गया है । उपाध्याय जी ने हिन्दू धर्म की नवीन भावना नहीं है, वे सनातन धर्म को विज्ञानसम्मत बताकर अवतारवाद के स्थान पर मानवतावाद की कामना करते हैं । परमात्म का विराट रूप इसी कोटि-कोटि मानवों की मूर्ति में है । मानव व्यक्तित्व ही इस परमात्म-व्यक्त सत्ता की सेवा से एक युगावतारी महापुरुष बन सकता है । 'राधा' के रूप में भारतीय नारियों की सेवा का आदर्श अपनालेने की प्रेरणा दी गई है ।

गुप्तजी इस नवीन युग के मौन कलाकार व साधक हैं । 'श्री वैष्णव' सम्प्रदाय ने इनके व्यक्तित्व को राममय बना दिया । इन पर राम-भक्ति, द्विवेदीजी तथा गांधीजी का प्रभाव अंकित हुआ । अत प्राचीन भारतीय

श्री मैथिलीशरण गुप्त

संस्कृति से, द्विवेदी युग की काव्यात्मक चेतनाओं व प्रवृत्तियों से तथा इस युगीन मानवतावादी आदर्शों से पूर्ण प्रभावित हैं। अतीत के स्वर्णिम युगों के संस्मरण, वर्तमान के दैन्यविषाद के अनुभव तथा भविष्य की सुखद संभावनाओं व कल्पनाओं के स्रष्टा हैं। इन्होंने समस्त शैलियों में अपनी रचनाएँ की हैं। महाकाव्य व खंडकाव्य में तो अद्वितीय स्थान प्राप्त किया है। वर्णनात्मक काव्यों से साहित्यिक व्यक्तित्व प्रारम्भ करके सूक्ष्म भावात्मक प्रणयन तक पहुँचे हैं। ये अपने युग के सर्वप्रथम गीति-काव्यकार बने। इनके गीतों में छायावादी काव्य की प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। इनमें भावोद्रेक, संवेदनशीलता, संगीतात्मकता के साथ रहस्यात्मकता का पुट भी है। रहस्यवाद में भी निर्गुण भावना की अपेक्षा सगुणोपासना का आग्रह परिलक्षित होता है। गुप्तजी आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि हैं। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की कोई ऐसी समस्या नही जो इनकी मार्मिक अनुभूति व कल्पना से अगोचर रही हो। व्यक्ति के महत्त्व से सामाजिक महत्त्व तथा सामाजिक महत्त्व से राष्ट्रीय महत्ता का निर्माण होता है। इन्होंने राम को केवल तटस्थ अवतारी देवता नही माना है, मानव-आदर्श के रूप मे माना है। इन्होने अपने आदर्शानुरूप कथानको का सचय कर कलात्मक नवीनता का परिधान दिया है। इनकी रचनाएँ युगीय चेतना के प्रभाव को अपने मे पचाती हुई युग-वाणी बन कर नव जागरण की सदेशवाहिका बनी हैं। इनमे व्यक्ति-सस्कार के साथ समाज-सेवा तथा राष्ट्रोत्थान की भावनाएँ हैं। उत्तरकालीन कृतियो में भावात्मक व कलात्मक प्रभाव के साथ बौद्धिक व सास्कृतिक प्रभाव प्रौढ परिपक्व रूप में निखरा है। उनके व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर विकास हुआ है।

वैसे तो गुप्तजी की काव्यात्मक प्रतिभा खडकाव्यो में अधिक उद्रिक्त हुई है, पर 'साकेत' उनकी साहित्यिक साधना का चरम सोपान है। इस काव्य की मूल प्रेरणा कवीन्द्र रवीन्द्र के 'काव्य की उपेक्षिताएँ' लेख से प्राप्त हुई है। मर्मी आलोचक के एक सकेत ने कवि की सवेदना को उभारा।

फिर तो करुण-व्यथा का सागर अपनी वेला की मर्यादा को तोड कर बह निकला । इस प्रेरक उरग का करुणस्रोत इस काव्य तक ही सीमित न होकर दूसरे काव्यों में भी पहुँचा। यशोधरा का आँचल भी उर्मिला की उर्मिल व्यथा से भीगा हुआ है। साकेत में उर्मिला की मूक व्यथा को वाणी का वरदान मिला । समस्त काव्य उसके कारण उच्छ्वासों से उच्छ्वसित है।

साकेत

साकेत में राम-वृत्त का आधार लेकर भी नवीन संस्करण किया गया है। राम-वृत्त के मार्मिक प्रसगो का निर्वाह व उपादान करते हुए भी नवीन उद्भावना को अधिक प्रश्रय दिया गया है। 'मानस' के मार्मिक प्रसगो को यथा-निर्वाह के लिए लेकर नवीन, उपेक्षित प्रसगो का समावेश किया गया है। 'साकेत' को ही समस्त घटनाओ का आधार माना है क्योंकि उनके काव्य की नायिका साकेत के अन्त पुर में अपनी अवधि के क्षण बिता रही है। इससे घटित घटनाओं का वर्णन ही किया जा सका है, प्रत्यक्ष घटनाओ के चित्रण का अवकाश सकुचित हो गया है। इसके मार्मिक स्थल ये हैं—लक्ष्मण-उर्मिला की विनोद-वार्ता, प्रवास-प्रसग, भरत का चित्रकूट में मिलन, कैकेयी-भरत की ग्लानि, उर्मिला-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, साकेतवासियों की रण-सज्जा, तथा पुनर्मिलन। इसमें कुछ नवीन प्रसग है, कुछ प्राचीन जिनके उचित ग्रहण-परिहार से कवि के वस्तु-सस्कार व भाव-सस्कार के प्रतिमान स्थिर होते हैं। नवीन उद्भूत प्रसगों की अन्तरात्मा 'उर्मिला-विरह-विवर्तन' ही है। इन प्रसगो को पूर्ण मनोरागों व आवेगो की तीव्रता से अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार गुप्तजी प्रसगो की नवीन उद्भावना में पटु हैं, उसी प्रकार पात्र-चयन व परीक्षण में भी। उन्होंने कई प्राचीन पात्रो को नवीन व्यक्तित्व दिया है। 'मानस' के मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भी एक आदर्श मानव रूप में अवतरित किया। जो स्वय कहते हैं :—

"मैं नहीं संदेशा यहाँ स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

साकेत के राम में वह परात्पर दैवी प्रभामंडल (halo) नहीं जो अन्य पात्रों के व्यक्तित्व को निस्तेज कर दे। लक्ष्मण भी कठोर तपस्वी योगी ही नहीं, पर उर्मिला के प्रणयागार के रूप में सरस संवेदनशील चित्रित किया गया है। कैकेयी की ग्लानि को प्रकाशित करने का मनोवैज्ञानिक अवसर दिया गया है। मानस की कैकेयी 'ग्लानि में गलने' के लिए छोड़ दी गई। यहाँ उन पात्रों का परिष्कार कर मोक्ष प्रदान किया गया है। सबमें नवीन चरित्र-निर्माण कौशल उर्मिला के रूप में हुआ है। प्रथम सर्ग में इस युग-युगीन उपेक्षिता तपस्विनी का रागी रूप में चित्रण हुआ है जो यौवन-सौंदर्य के द्वार पर खड़ी उषा के अरुणोदय में मुस्करा रही है। लक्ष्मण का उल्लास-मय मिलन-प्रसंग चित्रित होता है। इस संयोग के क्षणिक उपक्रम के पश्चात् ही वियोग का विस्तृत उपसंहार प्रारम्भ हो जाता है जिसका अवसान फिर अन्तिम मिलन के मधुर क्षण में होता है। इन दो मधुमय क्षणों के तटों के बीच विरह की अथाह सरिता हिलोरें ले रही है। उर्मिला 'पिसी चन्दन लता' है जो दूसरों के संताप-शमन का शीतल उपचार है। इन दो पंक्तियों में उर्मिला का सागरात्मक व्यक्तित्व खींच दिया गया है :—

"अवधि-शिला का था उर पर गुरु भार,
तिल-तिल काट रही थी दृग जलधार।"

इन चरित्र-चित्रणों में सामयिक प्रभाव भी सशक्त है। इस विरह-पूर में डूबती-उतराती उर्मिला का साहस-शौर्य भरा, शक्ति-प्रतीक व्यक्तित्व उस समय दीखता है जब लक्ष्मण के शक्ति-प्रसंग को जान कर वह रण-सज्जित साकेतवासियों का सचालन-सूत्र सभाल कर दुर्गा बनती है। भारतीय नारी का 'सरस-कठोर' व्यक्तित्व उस अतीत आदर्श की सृष्टि करता दिखाई देता है जहाँ "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" चरितार्थ होता है। जिस उर्मिला की जीवन-कारा में समस्त मधुर स्मृतियाँ, कल्पना तथा भावनाएँ छटपटा कर उसे निर्जीव बना रही थी, वही उर्मिला अपने पति पर आने वाले अनिष्ट की आशका तथा विपक्षी के प्रतिकार-क्षोभ से रण-चडी बन हुकार रही है। यह दृश्य उसके कुसुम कमनीय व्यक्तित्व को कुन्दन की कठोरता

देकर शाश्वत लोकादर्श का निर्माण करता है ।

इस महाकाव्य मे चरित्र-चित्रण कवि की ओर से, पात्रो के परस्पर, सवादो से तथा आत्माभिव्यक्ति से किया गया है । इस ग्रंथ मे बाह्य उपादानो का ग्रहण कम तथा सूक्ष्म मनोविज्ञान का प्रभाव अधिक है । विभिन्न परिस्थितियो मे पात्र पात्र सक्रिय सघर्ष से अपनी योग्यतानुरूप व्यक्तित्व का विकास करता है । चरित्रो में मानवीय स्तर की रक्षा हुई है, अत साकेत के पात्र अलौकिक विभूति न बन लोक-जीवन के चिर-परिचित साथी बन गये है । चरित्रो में शील, शक्ति व सौदर्य तीनो का समावेश है । पात्रो के परम्परागत आदर्श व स्वरूप की रक्षा करते हुए गुप्तजी ने नवयुग की भावनाओं का समावेश किया है । इसीलिए इसमे प्रजातन्त्रवाद, श्रमजीवी-सवेदना, सत्याग्रह, विश्व-बन्धुत्व की भावना का ग्रहण किया गया है ।

अन्त प्रकृति के सूक्ष्म चित्रण के साथ बाह्य प्रकृति का चित्रण भी साकेत में अच्छा हुआ है । सस्कृत की प्रकृति-चित्रण की शैली से लेकर नवीन छायावादी पद्धतियो तक का प्रयोग किया गया है शुद्ध काव्यवस्तु के रूप मे, मानवीय भावनाओ की पृष्ठभूमि क रूप मे, कही मानस-कवि के समान सदाचार के दृष्टात-चयन के रूप मे, कही लाक्षणिक अभिव्यजना से मानवीकरण के रूप मे । पर प्रकृति प्रधानत उल्लास-आह्लादमयी है । विरहिणी उर्मिला के उपालम्भ ने सूर की गोपियों की तरह 'मधुबन तुम कत रहत हरे' सौदर्य-स्नात प्रकृति को कोसा नहीं है । कोसा है अपने दुर्दैव को—जो आनन्दोल्लास के इस अनन्त उद्यान से आत्मविभोरमयी प्रेरणा नही लेने देता । वसन्त पर उपालम्भ कितना मार्मिक, सवेदनशील है—"मुझे फूल मत मारो।"

साकेत की रस-योजना प्राय समस्त प्रधान रसो का समन्वय है । शृगार-करुण-वीर—महाकाव्य के शास्त्रीय उपकरण—यथास्थान प्रयुक्त हुए है । रस परिपाक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से सिद्ध किया गया है, अत उनमें कृत्रिम-भाव विभावादि की योजना नहीं हुई है । सर्वाधिक प्रभावशाली विप्रलभ शृगार है जो इस विरहिणी नारी की जीवनतरी की पतवार है ।

परन्तु इसमें भारतीय संस्कृति के स्रोत भी निहित हैं। इसमें भारतीय समाज के वर्णाश्रम धर्म का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा गया है। आज के वर्ग-वर्ण-संघर्ष से त्राण पाने के लिये प्राचीन व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया गया है।

संदेश

व्यक्तिगत राग-द्वेषों से ऊपर उठकर मनोवेगों को संयमशील करके लोक-कल्याण में नियोजित करना इसका ध्येय है। अनुरागमय त्याग से ही लोक सेवा हो सकती है।

भारतीय सभ्यता का मूल आधार गार्हस्थ्य है। सुखी, संयमशील गृहस्थ स्वस्थ समाज का प्रतीक है। स्वस्थ, सबल समाज जागृत राष्ट्र का निर्माण करता है। विशाल राष्ट्रवादी चेतना आदर्श-मानवता का निर्माण करती है। गुप्तजी कहते हैं —

"मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय मानवता का विकास।"

राम स्वयं इस लुप्तप्राय भारतीय आदर्श को फिर से जन-जीवन में स्थापित करने का संकल्प लेकर अवतीर्ण हुए हैं—"मैं आर्यों का आदर्श बताने आया"। इस संक्रान्ति काल की अव्यवस्था में यह नवीन जीवन-विधान का संदेश मानव में जीवन के प्रति श्रद्धा, विश्वास उत्पन्न करता है। भुक्ति व मुक्ति का समन्वित आदर्श भारतीय दर्शन है। इन सांस्कृतिक उपकरणों के लिए गुप्तजी ने अतीत वैभव का भव्य चित्र उपस्थित किया है। जीवन की कला के साथ-साथ साहित्य की कला पर भी कवि अपने पुष्ट विचार सामने रखता है 'कला कला के लिए नहीं मानव के लिए है।'

इस काव्य में कतिपय गुणापकर्ष से हैं। अविच्छिन्न कथा-सूत्र का निर्वाह नहीं हो पाया। कथावस्तु में सूच्य प्रसंगों का आधिक्य है, दृश्य-प्रसंग कम हैं। नवम सर्ग में महान काव्य-वैभव होते हुए भी यह मूल कथा-प्रवाह में अन्तराय उपस्थित करता है। वेदना-विवृति अधिक है। कई प्रसंग अधिक लंबे होने पर इतिवृत्तात्मक मात्र रह गए हैं। छंदों में वही समरसता के कारण गद्यवत् गति हो गई है। राम का चिर-प्रतिष्ठित देव व्यक्तित्व उर्मिला

के मुख पृष्ठ पर आने से कुछ ह्रासापन आ गया है। अन्यानुराग का अनि-वार्य कहीं २ प्रकार बन गया है। कहीं २ दोनों में अधिकता तथा उसका का समावेश करने से प्रभाव तिमिर आ गया है।

प्रस्तुत नाटक में करुण रस की प्रधानता है। यहाँ भरत कथा-भाग का अनि-वार्य अंग न होकर भी नाटक की आत्मा है। इसमें उर्मिला तथा लक्ष्मण के वियोग की मूक वेदना का वर्णन दीपशिखा के समान जल रही है। प्रेम की उसकी परिभाषा भी अद्भुत है।

"दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि पतंग भी जलता है हाँ! दीपक भी जलता है।"

भरत विलाप की मूर्ति शरीर संभाषण वार्ता पलायन की केवल अनुराग-ग्लानि यह है कि उनके आत्मा-देव भूखे-प्यासे बिना कहे चले गये—"सखि वे मुझसे कह कर जाते" । पर उर्मिला का तो प्रेम-सुधा का प्रथम आस्वाद भी न मिला और इतना दीर्घकालीन विरह-शिला का भार उर पर वहन करना पड़ा। उसे जीवन-उषा में अंगों के स्थान पर विहाग छेड़ना पड़ा जहाँ समस्त मधुर स्निग्ध सिहरना का गुलाने के लिए उपक्रम करना पड़ा। उसकी वेदना रह-रह कर गायन के स्वर में गा उठती है।

"रुदन का हंसना ही तो गान।
गा गा कर रो उठती मेरी हृत्तत्री की तान।"

इतना होने पर भी वह संवेदना प्राप्त करने के लिए पर-पीड़न की अपेक्षा आत्म-पीड़न को ही श्रेयस्कर मानती है। वह प्रकृति के ऋतु-परिवर्तन के नवीन परिधान को देखकर उसके शृंगार पर उल्लास की बधाई देती है

"हँसो हँसो हे शशि फूल फलो ।
हँसो हिंडोरे पर बैठ झूलो ।
यथेष्ट मैं रोदन के लिए हूं
झड़ी लगा दूं इतना पिये हूं ।"

पर इस बाह्य मंच पर सुखांत दृश्य देखकर अन्तर्मन मूक व्यथा से रह-रह मसोस उठता है। वह करुण उपालंभ से काममित्र वसंत को कोसती है।

"मुझे फूल मत मारो !
मैं अबला, बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो !"

उसकी करुणा हा-हा खाकर, आँसू पीकर भी अपने अस्तित्व को अन्तिम अवधि क्षण तक सुरक्षित रखना चाहती है। गुप्तजी उसके इस व्यक्तित्व का चित्र इस पंक्ति-युगल में बँधा खींचते हैं—

"अवधि-शिला का था उर पर गुरु भार,
तिल-तिल काट रही थी दृग-जलधार।"

युग-युग की उपेक्षिता नारी को, उसकी अपलक करुण प्रतीक्षा को महिमामयी स्वीकृति मिली है। वेदना उसके जीवन का वह सबल बनी जिसने उसकी उदारता को विश्वव्यापिनी बना, तृण-तरु-लता पशुवर्ग तक से आत्मीयता स्थापित करने का अवसर दिया। इस भावपक्ष के माधुर्य का दायित्व कलापक्ष ने भी सुन्दरता से निभाया है। छंद-अलंकार-विधान ने रस-योजना में पूर्ण योग दिया है। ऋतु-वर्णन इस सर्ग में उद्दीपन विभाव में ही अधिक प्रयुक्त हुआ है, पर उसके प्रकृत स्वरूप की विपण्ण विकृति नहीं की गई है। इन गीतों में वेदना की तीव्र अनुभूति, परोक्ष सत्ता की जिज्ञासा, प्रकृति का रागात्मक सम्बन्ध—मधुर शब्द योजना, भावनाओं का मानवीकरण—लाक्षणिक अभिव्यंजना सब कुछ प्राप्त है। इसीलिए इसकी करुणा प्रश्न करने पर अधिक रोती है।

"करुणे ! क्यों रोती है
उत्तर में और अधिक तू रोई।"

श्री जयशंकर प्रसाद

द्विवेदी युग की उपज होते हुए भी प्रसादजी में अपनी कई मौलिक विशेषताएँ हैं। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर इन अवयवों का स्पष्ट प्रभाव है—पूर्वजों का काव्यात्मक संस्कार, शैशव की साहित्यिक गोष्ठी, पारिवारिक साहित्यिक वातावरण, उनकी धार्मिक भावना, तीर्थयात्रा-कालीन प्रकृति-सौंदर्य का आस्वादन, उपनिषद दर्शन का गूढ़ अध्ययन, गवेषणा के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि, बौद्धिक-संस्कृति

"करुणे ! क्यों रोती है
उत्तर में और अधिक तू रोई।"

द्विवेदी युग की उपज होते हुए भी प्रसादजी में अपनी कई मौलिक विशेषताएँ हैं। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व पर इन अवयवों का स्पष्ट प्रभाव है—पूर्वजों का काव्यात्मक संस्कार, शैशव की साहित्यिक गोष्ठी, पारिवारिक साहित्यिक वातावरण, उनकी धार्मिक भावना, तीर्थयात्रा-कालीन प्रकृति-सौंदर्य का आस्वादन, उपनिषद दर्शन का गूढ़ अध्ययन, गवेषणा के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि, बौद्धिक-संस्कृति

श्री जयशंकर प्रसाद

प्रकृति के सौन्दर्य से प्रभावित होकर आध्यात्मिक आधार ढूंढ़ने की वृत्ति ने जिज्ञासा भाव को प्रोत्साहन दिया है। मानव-जीवन की प्रधान वृत्ति प्रेम को उन्होंने वासना-मोह-त्याग तथा मानव-सेवा के रूप में सतत संस्कार कर उदात्त रूप दिया है।

इस प्रस्तुत भाव-विधान की अभिव्यक्ति का रूप-विधान भी इनका अपूर्व है। रस-छन्द-अलंकार आदि का कलात्मक शिल्प भाव-पक्ष का गौण उपकरण बन कर आया है। रसों मे शृंगार के उभय पक्ष का प्राधान्य है। करुण उद्रेक काव्यों की कमनीय कोमलता का हेतु है। समस्त भावों का अवसान प्रायः शान्त रस में होता है। 'रौद्र-वीभत्स-भयानक' रसों में इनकी प्रकृति का सामञ्जस्य न होने से रचना नहीं की। छन्दों मे करुणालय व 'प्रेम पथिक' मे गीतात्मकता प्रधान होने के कारण नूतन अतुकान्त प्रयोग है। छंदो-विधान में बंगाली व अंग्रेजी के सोनेट आदि का भी समावेश किया है। 'आंसू' का भावच्छद (छद) अपूर्व है। इनके काव्यों की शैली भी पुष्ट, परिष्कृत व प्रभावशाली है। वाग्वैदग्ध्य का प्रमाण प्राय प्रत्येक पद म मिलता है। भावावेश शैली में प्रवाह तीव्र हो जाता है। व्यंग्यात्मक शैली म दर्शन की तीक्ष्णता है। समस्त भावातिरेक की संश्लिष्ट पदावली कभी क्लिष्ट हो जाती है। शैली में इनका व्यक्तित्व बोलता है।

कामायनी मे प्रसाद की विशाल भावना को मूर्त आकार मिला है 'मनु-श्रद्धा' के पौराणिक कथानक को वैज्ञानिक आधार देने का सफल प्रयास है। 'मूल पुरुष व नारी की प्रवृत्ति' को मनोवैज्ञानिक भूमिका प्रदान की गई है। आज के सभ्य मानव में मूल प्रकृति कितनी विकृत हो गई है, अत सभ्यता का आवरण हटा कर मानव-निर्माण के मूल उपकरणो का अन्वेषण हुआ है। इस काव्य के सर्गों का शीर्षक घटना व पात्रसूचक नही मनोवृत्ति के क्रमिक विकास में योग देने वाली वृत्तियो पर रखा गया है। समस्त विशेष पात्रों का रूप व व्यक्तित्व भी प्रतीकात्मक है। पुरातन प्रलय दृश्य के बाद मानवी सृष्टि के अवशिष्ट बीजो से नवीन सृष्टि-सृजन का क्रम प्रारम्भ होता है। काव्याधार मनु का श्रद्धा के पाश से उन्मुक्त होकर इडा को सहधर्मिणी

क्षुब्ध होती है। इड़ा-बलात्कार होता है, मनु प्रजा से आघात पा आहत हो जाते हैं। श्रद्धा को स्वप्न में मनु की विपत्ति का आभास होता है। वह ढूंढ़ते २ आहत-मूर्छित मनु से मिलती है। अर्थात् सुप्त की सुप्त स्मृतियाँ पुनः पूर्ण होती हैं। श्रद्धा अपने कुमार (मानव) को इड़ा के हाथ सौंप मनु के साथ हिमालय पर महाप्रस्थान करती है। एक निराधार वायवीय प्रदेश में ठहरकर पीछे देखते हैं तो उन्हें त्रिदिव, विश्व के तीन आलोकमय गोलक दीखते हैं। श्रद्धा उन इच्छा-ज्ञान-क्रिया के गोलकों के स्वरूप का रहस्य समझाती है। श्रद्धा इन तीनों को समन्वित कर एक पूर्ण आनन्दप्रद जीवनादर्श का प्रतीक उपस्थित करती है। हृदय-बुद्धि-कर्म की वृत्तियों का सुन्दर समन्वय ही

मानवता की रूप-रेखा है—परिभाषा है।

इस काव्य में चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर है। सारे पात्र प्रायः किसी वृत्ति-भावना या चेतना के प्रतिरूप बनकर आये हैं। मनु अर्थात् मानव का मूल जीवन तत्व श्रद्धा है। वह आदर्श नारी शक्ति का प्रतीक है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के उर्वर आगन में।"

इस काम-पुत्री के सहयोग से मनु जीवन में पूर्णता प्राप्त करने में प्रवृत्त होते हैं। वासना से लेकर निर्वेद तक मनु जीवन मे पथभ्रष्ट पथिक से हो भटक जाते हैं। श्रद्धा के मूल्याकन मे त्रुटि करने से मनु वासना के पंक में फँस जाते हैं। श्रद्धा अन्तर्बाह्य सघर्ष को शमन करने की कुजी है। कर्म का अतिवाद उद्धत अह को जन्म देता है। मनु आज के भौतिक विज्ञानवाद की विचारधारा में भ्रान्त पुरुष का प्रतीक है। श्रद्धा विश्वासपूर्ण आस्तिक वृत्ति है। इडा में बुद्धि के विभ्रम का दुर्विलास चित्रित है। समस्त वृत्तियो को मानवीय व्यक्तित्व की मूर्त मांसलता प्रदान की गई है। चिता व लज्जा का रूप कितना मार्मिक है।

'कामायनी' मनोवैज्ञानिक महाकाव्य है अथवा काव्यात्मक मनोविज्ञान। मनोविज्ञान की दृष्टि से दुर्वृत्तियो की अन्तिम परिणति बुद्धिवाद-मूलक व्यभिचार के विरुद्ध प्रकृति विद्रोह करती है। मनु को फिर श्रद्धा के आँचल की 'शीतल बयार' लेकर अपने प्राणो को सहलाना पड़ता है। इसमे मानव की तीन शक्तियो—क्रियात्मक-बौद्धिक-भावनात्मक—का समन्वय स्थापित करने पर बल दिया है, 'कर्म ज्ञान व इच्छा' का सामहिक विकास सिद्ध करने का काव्यात्मक प्रयत्न है। "मानस वृत्तियो का काव्यात्मक विश्लेषण अपने प्रयोग में नवीन, सफलता मे प्रशस्त तथा नवीनता में अद्वितीय है।" पडित रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो में इस महाकाव्य के सौन्दर्य को उद्धृत करना अप्रासगिक न होगा। "यदि हम इस विशद काव्य की अन्तर्योजना पर ध्यान दें, समष्टि रूप मे कोई समन्वित प्रभाव न ढूढ़ें, श्रद्धा काम, लज्जा, इडा आदि को अलग-अलग लें तो हमारे सामने बड़ी ही रमणीय

चित्रमयी कल्पना-अभिव्यंजना की अत्यत मनोरम पद्धति आती हैं। इन वृत्तियों की आभ्यतर प्रेरणाओं व बाह्य प्रवृत्तियों को बडी मार्मिकता से परख कर उनके स्वरूपों की नराकार उद्भावना की गई है। स्थान-स्थान पर प्रकृति की मधुर भव्य आकर्षक विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्या! प्रकृति के भीषण रूप-वेग का भी अत्यन्त व्यापक परिधि के बीच चित्रण हुआ है। इस प्रकार प्रसादजी प्रबन्ध क्षेत्र में भी छायावाद की चित्रप्रधान और लाक्षणिक शैली की सफलता की आशा बाँध गये हैं।" अत कामायनी-काव्य में शास्त्रीय परिभाषा से भले ही समन्वय का अभाव हो, धीरोदात्तादि नामक विधान की कमी हो तथा दूसरे लक्षणो की योजना न हुई हो फिर भी आज के युग की आवश्यकता, रुचि, आदर्श व शिल्प-विधान में वह अद्वितीय है। वैसे कामायनी के वस्तु विधानमें प्रारम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम के अवयव स्पष्ट प्रतीत होते हैं। आशा की पृष्ठभूमि से मनु का जीवन प्रारम्भ, यज्ञ से मनोरथ-सिद्धि, फिर सघर्ष, फिर इडा सयोग काव्योत्कर्ष की चरम कोटि, फिर नियति। परम्परागत काव्य की परिणति दुखान्त होती है, पर प्रसाद के आनदवाद ने उसे सुखान्त बना दिया। कामद-त्रासद (Comedy-tragedy) के समन्वित प्रभाव ने काव्य को प्रसादात किया है। चरित्रात्मक रचना न होने पर भी मानवी रूप-रग प्राप्त है। पात्र आधुनिक सघर्ष में पडे मानव के प्रतीक हैं। विचित्रता तो यह है कि कामायनी का वस्तुपात्रात्मक द्रव्य सूक्ष्म व वायवीय होने पर भी महाकाव्य का उपादान बन गया है।

इस काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—प्राचीन लोक-कथा के विच्छिन्न रेखा-बिन्दुओं को भारतीय दर्शन, धर्म व मनोविज्ञान के सहारे एक प्रभावपूर्ण चित्र में परिवर्तित कर दिया है। इसमें प्रसादजी के प्रधान दार्शनिक कोणों को अभिव्यक्ति मिली है। एकान्त आत्मसेवी देव-संस्कृति भी ध्वसात्मक, नितात कामभूलक आसुरी वृत्ति भी विनाशमूलक—अत. दोनों का सतुलित उपयोग मानव-सृष्टि के विकास

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

में सहायक होता है। त्याग व भोग वृत्ति का मध्यम-मार्ग सेवा है। श्रद्धा समन्वित मन आनन्द व शांति का पात्र होता है। वैसे प्रसाद पर बौद्धों के दु:खवाद का प्रभूत प्रभाव है, पर फिर भी शैव-दर्शन का आनन्दवाद भी स्वच्छंदतः मुखरित हुआ है। अनुरक्ति व विरक्ति समन्वित सर्ववाद "सर्व खल्विदं ब्रह्म" की प्रतिष्ठा हुई है। नियतिवाद के नियंत्रण को प्रसादजी सदैव लेकर चले हैं। पुरुष प्रकृति पर नियंत्रण करना चाहता है पर इसके विपरीत उसे प्रकृति के नियमन में चलना पड़ता है। इसके साथ आध्यात्मिक चेतना का साक्षात्कार कई स्थानों पर मिलता है।

"हे विराट् हे विश्वदेव तुम कुछ हो ऐसा होता भान,
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत यही कर रहा सागर गान!"

गीता के कर्म-भक्ति व ज्ञान-योग तथा विराट् स्वरूप की काव्यात्मक झलक यहाँ मिलती है। कामायनी का कला-शिल्प भी भाव-सौंदर्य की कोटि का है। इसमें प्रयत्नसापेक्ष कौशल की अपेक्षा प्रतिभा-प्रसूत सहज सौंदर्य अधिक लक्ष्य होता है। सूक्ष्मवस्तु वैभवशील काव्य का परिधान पारदर्शक झिलमिल झाँकी वाला बन गया है। इसमें अभिधा शक्ति का न्यूनतम तथा लक्षणा-व्यंजना का अधिकतम आश्रय लिया गया है। वस्तु अलंकार-रस ध्वनि से काव्य-मर्म की अभिव्यंजना की गई है। रस निष्पत्ति के रूढ़ अवयवों का दुर्घट-घटन कहीं पर नहीं है। "आँसू के भीगे आँचल पर मन का सब कुछ रखना होगा"—वस्तु-ध्वनि का निदर्शन है। "हे अभाव की चपल बालिके री ललाट की खलरेखा" में अलंकार ध्वनि। कामायनी में स्थूल वस्तु व्यापार कम तथा मनोवेगों—राग-द्वेषों के संघर्ष का संवेदनशील कथन अधिक है। कामायनी भावात्मक शैली में निबद्ध भावनाओं का इतिहास है। प्रकृति-चित्रण को भी अन्त प्रकृति की साम्य-भावना से चित्रित किया है—

"सिंधु सेज पर धरा बधू अब तनिक संकुचित बैठी सी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी ऐंठी सी।"

छायावाद के समस्त कलात्मक उपादानों से इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ है। प्रगीत-मुक्तक की शैली का सर्व-प्रथम प्रयोग महाकाव्य के निर्माण

वस्तुतः "कामायनी नव संस्कृति के नव निर्माण और उसकी नव चेतना का परिचायक महाकाव्य है।"

छायावाद का जन्म—प्रसाद-काव्य के अध्ययन व अनुशीलन के लिए इस नवीन काव्यधारा से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। प्रसाद, पंत व निराला की त्रिमूर्ति ने इस नवीन सृष्टि को जन्म दिया। छायावाद का आविर्भाव बीसवीं शती के भावों-विचारों-जीवनमूल्यों से प्रभावित एक आन्दोलन है जो प्रचलित काव्य परम्परा, जीवनादर्श की प्रतिक्रिया के रूप में अवतीर्ण हुआ है। पश्चिम के 'साम्य, स्वातन्त्र्य व सहभ्रातृत्व' से प्रभावित जैसे राजनैतिक आन्दोलन उठा उसी बहिर्मुखी असंतोष की अन्तर्मुखी भावात्मक प्रतिक्रिया छायावाद के रूप में सामने आई। इसके मूल में वर्तमान का तीव्र असंतोष, कुंठा व निराशा तथा भविष्य के काल्पनिक सुखों का मधुर स्वप्न—दोनों का मिश्रित आपानक था जिसका प्रत्यक्ष स्वाद कटु-कषाय लेकिन चरम परिणति आत्म-विस्मृति का मादक प्रभाव! इन छाया-चित्रों के निर्माण के लिए दैन्य-अभाव की प्रकृत भूमि उर्वर नहीं थी, अतः उसके लिये सूक्ष्म-सुदूर क्षितिज आलोक का आँचल ग्रहण करना पड़ा। अतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर, यथार्थ से आदर्श की ओर, वस्तु-सत्ता से भाव-सत्ता की ओर काल्पनिक प्रस्थान का अभिधान 'छायावाद' पड़ा। अंग्रेजी साहित्य के स्वच्छंदतावाद से प्रभावित बंगाल की साहित्यिक प्रवृत्तियों ने इस अज्ञात प्रस्थान पथ को आलोकित किया।

जन्म

छायावाद की परिभाषा—भिन्न आलोचकों ने छायावाद की परिभाषा कई रूपों में दी है। कुछ परिभाषाओं की रूपरेखा से परिचित होना आवश्यक है। आचार्य शुक्ल कहते हैं—"आभ्यंतर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक व व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ व प्रचुर विकास छायावाद की विशेषता है। ....छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी अभिव्यंजना करने

परिभाषा

वस्तु की छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।" वे इसे "रहस्यवाद और प्रतीकवाद या चित्र भाषावाद" के समकक्ष, समानार्थक वाद मानते हैं।

डा. रामकुमार वर्मा कहते हैं—"परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की परमात्मा में। यही छायावाद है।"

सुश्री महादेवी वर्मा—"छायावाद तत्व प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।"

"छायावाद प्रकृति के साथ कवि के संवेदनात्मक सम्बन्धों का नाम है।"
—व्यथित।

"आशा के इन स्वप्नों व निराशा के इन छाया-चित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलाई।" —डा नगेन्द्र।

इन परिभाषाओं के सूक्ष्म परीक्षण से इतना स्पष्ट है कि छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियों में से किसी ने उसकी एक प्रवृत्ति पर अधिक बल दिया है, किसी ने दूसरी पर। किसी ने इसे भावात्मक सत्ता का विशिष्ट व्यक्तित्व दिया है, कोई उसे अभिव्यञ्जना की नूतन पद्धति मात्र, कोई उसे नूतन जीवन-दर्शन की विधायक चेतना के रूप में स्वीकार करता है, कोई केवल बौद्धिक विरोध-प्रतिक्रिया व प्रतिहिंसा की भावात्मक प्रक्रिया। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इसका आविर्भाव दार्शनिक, कलात्मक व काव्यात्मक क्रान्ति के स्वर में हुआ। दार्शनिक क्षेत्र में सर्वात्मवाद या सर्वचेतनावाद का प्रत्यक्षीकरण, कलात्मक क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रतिभा को केन्द्र मान कर भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति तथा साहित्यिक क्षेत्र में नूतन रूप विधान—भाषा-छंद-शैली के काव्य रूपों का पुनर्नवीकरण। अत छायावाद की कुछ मौलिक विशेष प्रवृत्तियाँ ये हैं—व्यक्तिवाद, शृंगारिकता, प्रकृति पर चेतन सत्ता का आरोप या मानवीकरण, तथा मूल दर्शन और रहस्यवाद।

इन लक्षण-बिन्दुओं पर थोड़ा केन्द्रित प्रकाश आवश्यक है। छायावाद की सर्वाधिक प्रमुख वृत्ति है—व्यक्तिवाद का स्वर। इसके दो विशिष्ट रूप

सामने आते हैं [illegible] मानव के [illegible] प्रकृति में [illegible] आत्मचेतन रहता। इसने द्विवेदी युग के — [illegible] की [illegible] से मुक्त हुए मानव व प्रकृति का [illegible] भाव-वैभव से [illegible]। द्विवेदी युग की कविता वस्तु-परक इतिवृत्तात्मक थी, छायावाद की आत्म-परक व भाव-परक। इस युग में आत्मलीनता का भाव [illegible]। वैदिक [illegible] दृष्टिकोण से मानव के [illegible] जन-जीवन का आत्म-दृष्टि से विवेचन करने का अवसर दिया। इसकी दूसरी विशेषता है शृंगार व प्रेम। द्विवेदी काल की [illegible] शृंगार का बहिष्कार किया। पर मानव मन की मूल वृत्ति इस युग में [illegible] होकर अतीन्द्रिय में काल्पनिक विलास की सामग्री बन गयी। प्रकृति पर नारी भाव का आरोप हुआ, तथा नारी के अतीन्द्रिय सौंदर्य—मन-आत्मा के सौंदर्य की मधुर अभिव्यंजना हुई। इस शृंगार में स्थूल ऐंद्रिय उन्माद भावना नहीं केवल विस्मय से आनन्दोन्माद होने का भाव है। प्रेम आत्मा का मधुमय भोजन बनकर आया है। रीतिकाल के वासनात्मक काम का संस्कार होकर उसे उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। पर अधिकतर छायावादी काव्य सौंदर्य, प्रेम व शृंगार के इन्द्रधनुषी पट से सजा हुआ है। नारी इस भावना की केन्द्र है उसी का रूप वैभव विभिन्न रंगों के प्रकाश में प्रदर्शित किया गया है। शुद्ध प्रेम व सौंदर्य प्रकृति-तत्वों के आलंबन रूप चित्रण में अवश्य पाया जाता है।

प्रवृत्तियाँ

'प्रकृति पर मानव तत्व का आरोप' छायावाद का प्राण-तत्व है। इस समय प्रकृति केवल शास्त्रीय नियम-निर्वाह के लिए या उद्दीपन विभाव के बने-बनाए साँचे में ढली हुई न रही। मानव व प्रकृति दोनों एक ही तत्व के पूरक अंग मान लिये गये। संस्कृत काव्यों की तरह छायावाद प्रकृति-काव्य नहीं है पर प्रकृति-सौन्दर्य से प्रभावित मन के भावचित्र की कोमल अभिव्यक्ति है। कई आलोचकों का मत है कि प्रकृति पर मानव चेतना का

आरोप काम-कुंठा को व्यक्त होने का व्यपदेश-मात्र है। प्रत्यक्ष जीवन के अभावों की पूर्ति प्रकृति के आँचल की छाया में विश्राम करने से होने लगी। अतः 'विजन-देश' के गानों की ओर कवि की कल्पना प्रेरित होने लगी। इसी को पलायनवृत्ति से भी सम्बोधन किया गया है। प्रसाद का यह गीत प्रसिद्ध है :—

"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे!
जिस निर्जन में सागर लहरी, अंबर के कानों में गहरी,
निश्छल प्रेम कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे! ...."

छायावादी कवि सम्पूर्ण संवेदना व आत्मीयता से प्रकृति के लघु से लघु जड़-चेतन तत्वों से प्रणय भरी मनुहार में बातचीत करता है —

"सिखा दो ना हे मधुप कुमारी!
मुझे भी अपने मीठे गान" —पंत

पर इस प्रकृति के सानिध्यपूर्ण साक्षात्कार से उसमें विषाद का स्वर तीव्रतम हो उठता है। उसे रह रहकर भान होता है कि उसे एक 'अव्यक्त अभाव' आकुल-व्याकुल करता है। यही उसकी भावना रहस्योन्मुखी हो जाती है। उसमें उस असीम सत्ता का भाव जाग्रत हो उठता है। वह जिज्ञासा भरे विस्मय से एक विहगिनी से प्रश्न कर उठता है —

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहिचाना?
कहाँ कहाँ हे बाल विहगिनि, पाया तूने यह गाना!"

ये छायावादी रहस्योक्तियाँ एक प्रकार की जिज्ञासाएँ हैं। ऐसे आध्यात्मिक अनुभव प्रत्येक आत्मोन्मुख व्यक्ति के जीवन में आते हैं। दर्शन को जीवन की अनुभूतियों में प्रत्यक्ष कर लेना रहस्यवाद है। इस युग में मध्य-युग की भक्ति-भावना, बौद्ध-दर्शन की दुःख-भावना, आध्यात्मिक आँख-मिचौनी के खेल की विरह-भावना ने इस रहस्यवाद का निर्माण किया है। परमात्म तत्व की जिज्ञासा इसकी मूल वृत्ति है।

इस छायावादी काव्य का भी मूल जीवन-दर्शन है। सुश्री महादेवी वर्मा ने इसे सर्वात्मवाद कहा है। प्रकृति के अन्तर में प्राण चेतना की भावना ही

का परिहार कर कहते हैं :—

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
मेरी वाणी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार ?"

भावों की सम्प्रेषणीयता का कौशल सबसे बड़ा अलंकार है। रस के स्थान पर 'ध्वनि' को अपनाया गया। मानवीकरण ने ध्वनि को तीव्रता दी —

"जगी वनस्पतियाँ अलसाई, मुख धोती शीतल जल से"

इसे आलङ्कारिक दृष्टि से समासोक्ति कहा जायगा। प्रसाद के 'आँसू' में—

"अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना।"

में विशेषण-विपर्यय के दर्शन होते हैं। प्रतीकवाद का प्रचुर प्रयोग प्रायः प्रत्येक छायावादी कवि में मिलेगा। पन्तजी के

"धूल की ढेरी में अनजान,
छिपे हैं मेरे मधुमय गान"

में तुच्छ वस्तु में उदात्त भावप्रवण शक्ति का प्रतीक प्रयुक्त हुआ है। निरालाजी की पंक्तियों में भी—

"वहाँ नयनों में केवल प्रात,
यह ज्योत्स्ना ही केवल गात।
रेणु छाये ही रहते पात,
मद ही बहती सदा बयार।"

वर्तमान काल के तीन महाकवियों की विशेषताओं से परिचय कराया जा चुका है। छायावादी युग दर्शन ने उन्हें कितना प्रभावित किया यह भी देख लिया गया है। अब गद्य-काव्य का स्वरूप तथा उसकी परम्परा का [illegible] अपेक्षित है। गद्य काव्य कवि-हृदय से उद्भूत भाव-लहरी का [illegible] अभिव्यक्ति है। यह प्रायः सर्वमान्य व्याख्या है।

गद्यकाव्य की परिभाषा तथा परम्परा—'गद्य काव्य [illegible] देशानुगति च' —महापात्र विश्वनाथ। यह काव्य के [illegible] का [illegible] करने वाला होता है। '[illegible]' [illegible] इस सीमित व्याख्या में कोई स्थान नहीं। [illegible]

के अभाव में जिस प्रसग, परिस्थिति या पात्र का संकेत मात्र देकर कथा-प्रवाह आगे बढ़ जाता है उसे ही अधिक परिवर्धित, पुष्ट व प्रभावशील स्वरूप में प्रकाश मे लाना—खडकाव्य कहलाता है। महाकाव्य का क्षेत्र है समस्त जीवन, खडकाव्य उस जीवन की एक मार्मिक प्रसग की झाँकी। महाकाव्य सामाजिक मानव का समष्टि चित्र है, खडकाव्य व्यक्तिनिष्ठ जीवन का व्यष्टि चित्र। रामायण में पचवटी प्रसग अथवा महाभारत में जयद्रथवध एक छाया-चित्र के समान अस्पष्ट—अवांतर प्रसग के रूप मे आये है पर यदि इसी प्रसग को काव्य का मूलाधार बनाना हो तो देश काल पात्र का परिवर्धित प्रतिचित्र (Enlargement-Copy) देना होगा। गुप्तजी की 'पचवटी' और 'जयद्रथवध' इसी प्रकार के खडकाव्य है। इसमें किसी एक पात्र के मानस-द्वन्द्वो के घात-प्रतिघात-मूलक उत्थान-पतनों का पूर्ण विश्लेषण होता है जो किसी कथानक का आधार लेकर चलता है। जो अन्तर भाव-रूप-विधान की दृष्टि से अनेकाकी व एकाकी मे, उपन्यास व कहानी में, होता है वही प्रायः महाकाव्य व खडकाव्य मे होता है। इस सघर्ष-सकुल जीवन में समय व अवकाश की संकीर्णता के कारण सूक्ष्म-सरस काव्य-विधा की ओर जनरुचि अधिक आकृष्ट होती है। यही कारण है कि आधुनिक युग में महाकाव्य से अधिक खडकाव्य का प्रणयन हुआ है।

परिभाषा

यह काव्य का खड रूप प्राचीन भारत की प्रतिमाओं का भी उपास्य रहा है। 'महाभारत' के कई पर्व-उपपर्वों की कथा खडकाव्य के रूप में वर्णित है : नलोपाख्यान, सावित्री-चरित्र, ध्रुवोपाख्यान आदि। कालिदास का 'मेघदूत' आदर्श खडकाव्य के रूप मे प्रसिद्ध है। इसमें विरही यक्ष अपने प्रवास-काल की समस्त सवेदनाओ का भार देकर मेघ को प्रेयसी के पास भेजता है। इस काव्य में आत्मगत विरहानुभूति, सगीतात्मक शैली, प्रकृति सौदर्य की पृष्ठभूमि तथा सदेश की मार्मिक एकान्विति सभी तत्वो का समाहार हुआ है। इसकी शैली पर पवन-दूतादि काव्यों की रचना हुई पर मेघदूत के समक्ष सब हतप्रभ होकर लुप्त-प्राय हो गये। हिन्दी मे प्रेमाख्यान मूलक

खण्डकाव्यों का सृजन हुआ पर केवल इतिवृत्त निरूपण के अतिरिक्त कोई विशेष प्रकार अजित न हुआ। नरोत्तमदास का 'सुदामा चरित' ब्रजभाषा की माधुर्यपूर्ण पदावली में सरस, प्रथम सफल खडकाव्य है। इसकी सूक्ष्मता मार्मिकता का सृजन करती है। भावपक्ष व कलापक्ष का सन्तुलित अनुपात सरसता का कारण है। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने ब्रजभाषा में 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण' लिखा। 'उद्धवशतक' भी मुक्तक शैली में लिखा खड काव्य ही है।

परपरा

रामनरेश त्रिपाठी, भगवान दीन, प्रसाद आदि ने भी इस क्षेत्र में सफल रचना की। त्रिपाठीजी ने 'पथिक' 'मिलन', 'स्वप्न' आदि में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रण कथा के वातावरण की सृष्टि करके पृष्ठभूमि का काम देते हैं। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इस काव्य रूप में प्रभूत रचनाएँ की। 'रंग में भंग, पंचवटी, जयद्रथवध, नहुष' आदि बड़े लोक-प्रसिद्ध व सरस खडकाव्य हैं। इनके काव्यों में कथा-सूत्रता पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, नाटकीय दृश्य-विधान, प्रकृति-सौंदर्य तथा छद-अलंकार रस की योजना—समस्त तत्वों का समन्वय पाया जाता है। पूर्व की कृतियों में भावात्मक—रागात्मक तत्व की प्रधानता होने से सहज सौष्ठव अधिक है, पर अन्तिम खडकाव्यों में बौद्धिकता के विशेष आग्रह ने प्रवाह व प्रभाव को आक्रांत कर दिया है। इनकी कल्पना ने रूढ़ प्रसंगों व चरित्रों में नूतन उद्भावना भी की है। महाकवि निराला ने भी 'तुलसीदास' व 'राम की शक्ति-पूजा' खडकाव्य लिखे। सियारामशरण ने 'मौर्य विजय' लिखा जो गीतात्मक होते हुए भी खडकाव्य के विशेष समीप है। बालकृष्ण शर्मा नवीन की 'विस्मृता उर्मिला', रामकुमार वर्मा की 'चित्तौड़ की चिता' अन्य सफल रचनाएँ हैं। आज के खडकाव्यों में प्रायः निम्नलिखित तत्वों का समावेश रहता है—

मार्मिक प्रसंगों की कथान्विति, प्रधान पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, चरित्र-चित्रण में नाटकीय कथोपकथन तथा नाटकीय दृश्य-विधान, वीर-करुण-शृंगार में से किसी का अंगी के रूप में रस-परिपाक, भाषा की पुष्ट-प्रांजलता तथा छंदों की सरस संगीतात्मकता मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त

प्रमुख हैं।

निराला का काव्यात्मक व्यक्तित्व—इस युग की साहित्य सर्जना करने वालों में 'निराला' का व्यक्तित्व निराला है। उनके लिए समालोचक का 'आश्चर्यजनक प्रश्न' ठीक उतरता है। 'शरीर, मन व आत्मा' तीनों में पुष्ट, प्रौढ़ व तेजस्वी, मानो सत्-चित् और आनन्द के अणुओं से इनके ये तीनों तत्त्व घटित हुए हों। इन्होंने कई भाषाओं में अच्छी प्रगति प्राप्त कर ली अतः इनकी कृतियों में कई प्रांतीय भाषाओं के साहित्य का सम्मिलित प्रभाव दीखता है। बंगाली का प्रभाव उनकी शैली, भावना, रहस्यात्मकता पर; मानस का प्रभाव उनकी भक्ति भावना पर, संस्कृत के वेदान्त—उपनिषद् का प्रभाव उनकी चिन्तन-धारा पर, अंग्रेजी का प्रभाव उनके छन्द व संगीत विधान पर तथा मार्क्स का प्रभाव उनकी प्रगतिशील कृतियों पर। इस प्रकार भाव व प्रभावों का इन्द्रधनुष इनकी रचनाओं पर विविध रूप-रंगों का आवरण डाले हुए है। इनके काव्यों में पुरुष-तत्त्व—शौर्य व पौरुष का प्राधान्य है तथा स्त्री-तत्त्व—सुकुमारता व सुन्दरता की अपेक्षाकृत गौण स्थिति है। विरोधी गुणों से जैसे उनका व्यक्तित्व बना है

निराला का व्यक्तित्व

वैसे ही वैषम्यपूर्ण साम्य से काव्य। अध्ययन, भक्ति व चिंतन के तीन बिन्दुओं ने काव्य-सर्जन को संगत बनाया है। वे मस्तिष्क से दार्शनिक, हृदय से कवि हैं। इनके काव्य-क्षेत्र में उतरने के समय काव्य-धारा

नं की कठोर कारा से मुक्त तो कर दी गई पर दीर्घ कारावास मूर्च्छा व जड़ता अभी बनी थी। जीर्ण-शीर्ण परम्परा के भग्नावशेषो निर्मूल करने के लिए इनका प्रवेश क्रांति की झंझा बन कर सामने ा। 'अनामिका' इस आँधी का पहला झोंका था। भाव-भाषा-छंद सब र। ये 'अतुकांत स्वच्छंद छंद' के प्रथम प्रवर्तक हैं। संगीत के स्वरो से न्य का शृंगार किया मानो इन्होंने सरस्वती के हाथों से उसकी वीणा की ार प्रारम्भ करवाई। छायावाद की कायवी देह-लतिका की चपल ों को अद्वैत दर्शन के फल-भार से धीर मथर बना दिया। उनका ज्ञान ार व चिन्तन अद्वैतमूलक तथा भाव-अनुभूति-संवेदना रहस्यात्मक हैं। ात्म तत्व की विराट भावना से तथा सच्चिदानन्द की परम ज्योति से का काव्य आलोकित-अनुरंजित है। काव्य को इन्होंने सशक्त भाव भूमि प्रतिष्ठित किया। इनके काव्यों में ओजपूर्ण शौर्य व करुण संवेदन दोनों ी-साथ मिलते हैं। उनका दर्शन रामकृष्ण व विवेकानन्द से अनुप्राणित उनकी रहस्य-भावना कवीन्द्र रवीन्द्र व स्वच्छंदतावादी अंग्रेजी काव्य दाय से। 'सत्य ब्रह्म जगन्मिथ्या' ने ज्ञान क्षेत्र में 'सोऽहं' का साक्षात्कार नें की क्षमता दी पर भाव-क्षेत्र में वे अपने ससीम व्यक्तित्व को उस आनंद ृष्टि मे तिरोहित नहीं होन देना चाहते।

"आनन्द बन जाना हेय है, श्रेयस्कर आनंद पाना है।"

दर्शन परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासु बनाता है, रहस्य इस प्रत्यक्ष सत्ता प्रति संवेदनशील। अत इनके काव्य में शक्ति व सौंदर्य का, दर्शन-रहस्य , बुद्धि व भावना का अभूतपूर्व सामंजस्य है। यह विरोधाभास स्वय ना व्यक्तित्व रखता है। प्रकृति में इन दार्शनिक भावनाओं को प्रत्यक्ष या है।

उनके काव्यात्मक विकास के कई सोपान दीखते हैं। 'अनामिका' क्रांति-सूत स्वच्छंद छंद व नादमयता का प्रयोग। 'परिमल' में आकार तन व भावना का समन्वय। मुक्त गीतों में जीवन-स्पंदन व यथार्थ आग्रह। कास के अन्तिम चरण में प्रगतिशील तत्वों का सकलन। इनके ये चरण-

संकेत प्रमाणित करते हैं कि इनका विकास युग-भावनाओं व सामयिक चेतनाओं को आत्मसात् करता अभिव्यक्ति का नूतन मार्ग ढूंढ़ रहा है। उत्तरकालीन रचनाओं में बुद्धि व दर्शन तत्व का प्राधान्य होने से गद्यवत् गभीर गवेषणा वाला पद्य रह गया है।

विकास क्रम

मुक्त प्रगीतों में छायावादी सौंदर्य-भावना व शृंगार का प्रतीकात्मक वर्णन हुआ है। 'जूही की कली' मे कोई वासकसज्जा अपना रति-रंग कर रही हो ऐसा ध्वनित होता है। प्रगतिशील रचनाओ मे मानव के उपेक्षित वर्ग को सवेदनशील सबल दिया है—'भिखारी, अथवा विधवा' में रागात्मक सहानुभूति है। 'जागो फिर एक बार' में राष्ट्रोद्बोधन के स्वर गूंज उठते हैं।

दर्शन स्वरूप का सकेत ऊपर हो चुका है। जगत् को वे असत्य, मिथ्या, माया-प्रपंच मानते हैं। केवल एक विराट-सत्ता ही शाश्वत है, उसी की ज्योति से चराचर प्राणित है। मानव माया के कारण भ्रान्त भटकता है। माया का सर्वाधिक सात्विक रूप प्रेम है। यही प्रेम मानव का विकास—जडता से मोक्ष करवा सकता है। इनकी "तू और मैं" शीर्षक कविता में असीम-ससीम की सत्ताओ का सापेक्ष्य स्वरूप निर्धारण करने का प्रयत्न है।

"तुम शिव हो, मैं हूं शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति।"

इसी के साथ-साथ रहस्यवाद का सकेत इस निम्न पद्य मे मिलता है:—

"वहां एक पहले कर वीणा दीन, तंत्री क्षीण—नहीं जिसमें झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊं—मां क्या गाऊं ?"

इनकी काव्यगत मान्यताएँ निराली हैं। छन्दो म पूर्ण निरंकुश स्वच्छदवादी। शब्द-चयन बडा शास्त्रीय, शब्दो की अभिधा शक्ति पर विशेष आग्रह, भाषा तत्सम, समस्त सस्कृत पदावली। शैली—'समासबहुला गौडी'। सगीत शास्त्र के विशेषज्ञ होने के कारण ताल-स्वर-लय का पूरा ध्यान रखते हैं। रस मे वीर व करुण—जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व में

काव्य रचनाएँ

थे। लक्ष्मण इन विभीषणादि सुग्रीव इस सेना में राम के सर्वस्व हैं, यह प्रकल्प कर रहे हैं। राम की कल्पना अतीत के अनुकूल गुणों का स्मरण कर रही थी। विटप उद्यान में जानकी का प्रथम मिलन दर्शन—"नयनों का नयनों से मोहन-प्रिय सम्भाषण।" सीता की अपूर्व सौंदर्य-गरिमा में स्मार उनकी कल्पना ने वर्तमान की विरह-व्यथा की मिश्रण उत्पन्न की। शिवधनुर्भंग की घटना ने उनके मन में विश्व-विजय भावना का संचार किया। पर रावण के विजय-हुंकार से उनका उत्साह हीन-भावना में परिवर्तित हो दो मुक्ता-कणों में पद-पद पर बिखर पड़ा। भक्त भावुक हनुमान ने इसे लक्षित किया। तत्काल महा विक्षोभ से "सागर के पथ प्रतिपथ तोड़ता" पवनात्मज वेग से नभ में उड़ा। उनके इस भीम-पराक्रम को देख शिव ने शक्ति से संकेत करके कहा कि किसी विद्या

कथा-सूत्र

से इसे प्राप्त करने में तो हमारे भक्त रावण की रक्षा का विधान संकल्पमय है । शक्ति अंजना का रूप धारण कर प्रकट हुई और हनु में मातृ-कुसुम कृत्रिम रोष से उपालम्भ देने लगी । तुम "बाल्यपने रवि भक्ष लियो तब तीनहुं लोक भयो अंधियारो ।" अब भी तू वही पाप दोहराना चाहता है । पवन को निर्देश करके तू राम के आराध्य शिव का ध्वंस करेगा । क्या तू स्वामि-सेवा का निर्वाह इसी भांति कर रहा है ? कपि शान्त हो गए, देवी अन्तर्धान हो गई । सब यूथपति राम को विजय के लिए साहस व उत्साह दे रहे थे पर राम स्वयं अपनी असफलता देख रहे थे—

"उतरी, पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण;
अन्याय जिधर है उधर शक्ति, कहते छल छल,
हो गये नयन, कुछ बंद पुनः ढलके दृग जल ।"

राम सोचने लगे, दैवी विधान अचिन्त्य है । आज समस्त दार रण में श्रीहत हो गये हैं । आंख मींचने पर देखा तो—

"देखा, हैं महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक ।"

साथियों, यूथपतियों ने सम्मति दी—

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन !"

राम ने इस निर्णय का स्वागत किया—

"मातः दशभुजाः विश्व ज्योति मैं हूं आश्रित ।"

यह वंदना कर आराधना में दीक्षित हुए । हनुमान आराधना के अर्घ्य के लिए एक सौ आठ कमल लेने चले । राम ने नाना प्रकार के शक्ति साधना के प्रतिष्ठानों को समाधि के अष्टांग अवयवों से पार कर—आज्ञा चक्र में पहुंचाया । वे लगातार छ दिन तक कमल अर्घ्य देते रहे । अन्त में एक कमल रह गया और मन सहस्रार को पार करने का प्रयत्न करने लगा । निशा के युग प्रहर बीतने पर साक्षात् दुर्गा स्वयं भक्त की परीक्षा के लिए अन्तिम कमल लेकर विलीन हो गई । राम ध्यान-मुद्रा से जगने पर कमल न देख सिद्धि के

संदेह से विचलित हो उठे। उन्हें तत्क्षण प्रतिभान हुआ

"'यह है उपाय' कह उठे राम ज्यों मंद्रित घन—
कहती थीं माता मुझे सदा राजीव नयन।"

उन्होंने अपनी साधना को विधिपूर्वक समाप्त करने के लिए अपना नेत्र-पद्म निकाल कर देना चाहा। शूल-विद्ध करने के लिए ब्रह्म शर को लेकर ज्यों ही आघात करने हैं त्यों ही शक्ति-दुर्गा ने—

"साधु साधु! साधक धीर धर्मधन धन्य राम!
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।"

अन्त में देवी ने विजय-वरदान का जय-घोष किया—

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।"

इसकी कथावस्तु में नवीन उद्भावनाएँ हैं। कमलार्पण कथा विष्णु सबद्ध है, विष्णु के अवतार राम से नहीं। 'यम-नियम' की साधना विधि का समेल है। महाशक्ति की त्रिमूर्ति का भी उपास्य माना है। इस काव्य में राम-हनुमान आदि पात्रों के चरित निरूपित हैं। राम में निराशा-दैन्य तथा परेंगित बुद्धि का आरोप करने से

आलोचना

ईश्वरत्व का रूप चाहे विकृत हुआ हो, पर मानवीय स्वरूप का सौन्दर्य आ गया है। हनुमान में परम्परागत शौर्य व शक्ति के उपकरण विद्यमान हैं। दूसरे पात्रों का केवल प्रसगवश नामोल्लेख हो पाया है। खंड काव्य में अनेक पात्रों के चरित्र-चित्रण का अवकाश भी नहीं होता।

इसमें आद्योपांत वीर रस की अभिव्यंजना है। पतत्प्रकर्ष कहीं भी नहीं होता। इस काव्य का छन्दालंकार विधान बड़ा प्रौढ़, प्रभावशाली है। मुक्त-छंद होते हुए भी भाषा में प्रवाह है। रसगर्भत्व की क्षमता है। भाषा समस्त संस्कृत, 'बाण की वाणी' का आभास देती है लेकिन युद्ध-प्रसंग में यह दुरूह क्लिष्टत्व दोष गुण में परिवर्तित हो गया है। एक नमूना देखिए—

"अनिमेष-राम-विश्वजिद्-दिव्य शर भंग-भाव
विद्धांग-बद्ध-कोदंड-मुष्टि-खर रुधिर स्राव।

रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दलबल,
मूच्छित सुग्रीवांगद भीषण गवाक्ष गय-नल ॥"

इस प्रकार 'राम की शक्ति पूजा' छायावाद की क्षय-शाम कविता कामिनी में शक्ति संचार का एक सफल 'काया-कल्प' विधान है। यह निराला के पौरुष-काव्य का प्रथम निदर्शन है।

मुक्तक-काव्य और उसकी परम्परा—प्रबंधात्मकता से मुक्त कृति को मुक्तक कहते हैं। "छन्दोबधमय पद्य तेन मुक्तम् हि मुक्तक" इस परिभाषा के अनुसार छन्दोमुक्त रचना भी इसी कोटि में आती है। कथा के पूर्वापर प्रसंग के कथानुबंधन की जो अपेक्षा न कर स्वतः सर्वांग संपूर्ण हो उसे मुक्तक कहेंगे। प्रबन्ध में देश-काल-पात्र संबद्ध पद्य का अपना निर्दिष्ट स्थान है उससे भिन्न उसका कोई महत्व नहीं, पर मुक्तक में पर सत्ता निरपेक्ष प्रत्येक पद्य स्वतंत्र है, स्वच्छंद है। प्रबंध काव्य को यदि एक बासन्ती वाटिका मानें तो मुक्तक को एक पुष्प-गुच्छ जिसमें वसंत की श्री, सुषमा, सौरभ सबका संकलित सार 'सूक्ष्म संस्करण' के रूप में विद्यमान है। उसमें स्वतन्त्र रसोद्रेक की क्षमता रहती है। प्रबन्ध में विस्तारमय रसात्मक वातावरण रहता है। मुक्तक में संक्षिप्त सारपूर्ण घनत्व। एक में द्राक्षा-लता का व्यापक फैलाव, दूसरे में द्राक्षा-कण। पाठक प्रबन्ध की कथात्मक धारा में आत्मविस्मृत होकर रसास्वाद करता है, मुक्तक में रस-बिन्दु से आत्म-तोष। किसी व्यंग्य-पक्ष या मार्मिक प्रसंग पर स्निग्ध 'केन्द्रित प्रकाश' डाल कर पाठक को रसमग्न करना इसका लक्ष्य होता है। इसके लिए कवि प्रतिभा को सामान्य जीवनसापेक्ष्य प्रसंग-चयन, कल्पना की तीव्रता व अनुभूति की सरसता तथा संक्षिप्त सशक्त भाषा का संश्लिष्ट विधान करना पड़ता है। कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समस्त शैली की योजना करनी पड़ती है। मुक्तक में आत्म-परकता प्रधान है कवि बाह्य विषयों को अपनी भावुक-कल्पना से सँवार कर लोक-प्रभावान्वित स्वरूप में व्यक्त करता है।

मुक्तक

रसिकता तो अद्वितीय है। उनके विषय मे आनदवर्धनाचार्य लिखते हैं "अमरुकवेरेक श्लोकः प्रबधशतायते।" अर्थात् अमरु के प्रत्येक श्लोक में सैंकडो प्रबध काव्यों की रस-सामग्री विद्यमान है। प्राकृत मे लिखी हाल की गाथा-सप्तशती तथा उससे प्रभावित-प्रेरित 'गोवर्धनाचार्य' की आर्या छद मे लिखी 'आर्या-सप्तशती' बिहारी सतसई सरिता के उद्गम मानसपूर हैं। अनेक सूक्ति-ग्रथो मे सकलित सगृहीत रस, अलकार, चमत्कार, ऊहा, नीति, वक्रोक्ति, अन्योक्ति प्रधान पद्य मिलते हैं जिससे पता लगता है कि सस्कृत साहित्य मे 'मुक्तक निधि' कितनी निर्मित हुई। इस काव्य-विधा को पालि, प्राकृत, अपभ्र श, डिंगल आदि भाषा-साहित्य में प्रभूत प्रश्रय मिला। 'वीर-रसात्मक' मुक्तक दूहो का राजस्थानी मे अपार भडार है। कबीर ने अपने मुक्तक काव्य को समाज के विपाक्त व्रण की शल्य-चिकित्सा के लिए प्रयुक्त किया। तुलसी ने दोहावली व राममतसई की रचना सन्त-भक्ति भाव से ही की अत शुद्ध काव्यात्मक रसात्मकता के स्थान पर भक्ति-निरूपण व नीति-चित्रण अधिक हैं, फिर भी प्रेम का सात्विक स्वरूप जनमानस के सामने रखने के लिए चातक-मीन की प्रतीक योजना अति मधुर व सवेदनशील है। रहीम के दोहो मे नीति के साथ मार्मिक व्यजना की मदुता भी है। रीति काव्य अपनी शृगार भावना लेकर अवतीर्ण हुआ। उसने मुक्तक मे ही अपनी वासना को मुखरित किया। नायिका-भेद व नख-शिख की मुक्त मालाएँ आश्रयदाताओ को भेट कर द्रव्य, यश अर्जन किया गया। इस काल मे मुक्तक की रस-रग भरी पिचकारी से भावनाओं की रगरेली मनाई गई। इस काल मे बिहारी की विभूति चिरस्मरणीय हैं। शास्त्र-सम्मत रस-परिपाक की सिद्धि इनकी सतसई मे हुई। इनकी रचना ने शृगार का 'सुधाघट' परिपूर्ण कर समाज को सौंपा। अन्य कवि केवल 'मधु-कण' सचय मे ही लगे रहे। **"सतसैया के दोहरा ज्यो नावक के तीर"** के बिहारी ने 'गागर मे सागर' भर कर कवि-कौशल की इयत्ता प्रमा-की। मतिराम की सतसई मे भी सरसता, पदलालित्य पर्याप्त हैं। में लक्षण-ग्रथो की रचना भी मुक्तक मे हुई पर उसमे न तो शास्त्रीय

पक्ष का निर्वाह हुआ न साहित्यिक पक्ष का। रसखान के—"ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं" तथा रसलीन के "अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार; जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवन इकबार।" रसज्ञों की जिह्वा पर सर्वदा नृत्य करते रहते हैं। इस छोटे से पद्य में—भाव, रस, अलंकार, कल्पना, छन्द—सबका अपूर्व समन्वित योग है। घनानन्द-कवित्त में भी काव्यात्मक चमत्कार उच्च कोटि का है। सेनापति का प्रकृति-चित्रण के साथ भाव गुम्फन भी अच्छा हुआ है। लेकिन इन उत्तरवर्ती कवियों की रचनाओं में भाव के स्थान पर कल्पना की उड़ान, रस के स्थान पर चमत्कार, संवेदनशील अनुभूति के स्थान पर पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा चित्र-काव्य विधान का आग्रह अति-सीमा तक पहुँच गया। परिणाम यह हुआ कि कविता का जन-जीवन से साथ छूट गया। दीनदयाल गिरि तथा गिरिधर कविराय ने अप्रस्तुत प्रसंगों व अन्योक्ति द्वारा जन-जीवन के मार्मिक प्रसंगों की व्याख्या की जो अधिक लोकप्रसिद्ध हुई। ब्रजभाषा में सरस कोमल भावनाओं की अभिव्यंजना शक्ति अधिक रही, अतः वीर तथा दूसरे उग्र भावों पर कविता न हुई। रीति काव्य के रसार्द्र दलदल में हमें 'भूषण' का कर्तव्य कठोर भूधर भी दिखाई पड़ा जिसने राष्ट्रोत्थान का रण-घोष सुनाया। वीररस की राजस्थानी भाषा के दूहों में विशाल सर्जना हुई जिसका प्रभूत अंश अप्रकाशित है। 'वियोगी हरि' ने ब्रजभाषा के इस आक्षेप का मार्जन किया कि ब्रजभाषा की रमणी रण-भेरी नहीं बजा सकती। उनकी 'वीर-सतसई' ब्रज में वीरोचित संस्कार उत्पन्न करने में समर्थ व सफल हुई।

छायावाद के प्रारंभ ने मुक्तकों को विशेष प्रोत्साहित किया। रूढ़ सामाजिक-साहित्यिक संस्कारों से मुक्ति पाने की तीव्र कामना मुक्तकों में विकीर्ण होने लगी। इस युग के सभी कलाकारों ने मुक्तक में रचना की, पर इस क्षेत्र में पंतजी का व्यक्तित्व प्रधान है।

सुमित्रानन्दन 'पंत' और उनके 'मुक्तक' (पाठ्य)—पंतजी के काव्यात्मक व्यक्तित्व के निर्माणकारी तत्वों से संकेतात्मक परिचय

तरह मुग्धा प्रेयसी के रूप में प्रकृति को देखा है। उन्होंने प्रकृति को सौंदर्य व प्रेम का अगाध उत्स माना है।

पंत और विभिन्न वाद—आधुनिक विभिन्न वादों ने पंत को उतना प्रभावित किया जितना उनके व्यक्तित्व ने वादों की विचारधारा को प्रभावित व पुष्ट किया है। जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, छायावाद की प्रवर्तक त्रिमूर्ति में पंतजी का महत्वपूर्ण स्थान है। छायावाद की समस्त विशेषताओं के दर्शन उनकी पूर्ववर्ती कृतियों में मिलते हैं। प्रकृति को मानवीय रूप में देखना, सौंदर्य, प्रेम, विरह, करुणा की अन्तर्धाराएँ; कलाकी कल्पना के उच्छ्वास, भावध्वनि तथा कला-शिल्प; रहस्यात्मक अनुभूति, प्रतीक विधान सब की सश्लिष्ट योजना उनके काव्यों में ओत-प्रोत है। प्रकृति-सौंदर्य में उनका दृष्टिकोण ऊपर दिग्सूचित हो चुका है। वे 'तृण-तरु-लता-भ्रमर विहगिनी' से अपना तादात्म्य स्थापित कर भाव-विनिमय करते चलते हैं। "सिखा दो ना हे मधुप कुमारी, मुझे भी अपना मीठा गान" में कितनी मार्मिक स्निग्ध याचना है। इस सौहार्द के साथ करुण कल्पना का योग है। छायावादी काव्य का वादी स्वर विरह है। इसको वे काव्य का मूल स्रोत मानते हैं।

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान !
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान !!"

विरह को वे वरदान मानते हैं, यथा—

"कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है !"

भिन्न-वाद

यह लाक्षणिक अभिव्यंजना किसी भी साहित्य का शृंगार बन सकती । इसके साथ ही मानवता के सुख-दु:खो से आत्मीय संवेदना उनमें पूर्ण । 'गुंजन' तो उनकी आत्मा का उन्मन गुंजन ही है। यहाँ पर आकर व प्रत्येक मानव के उर-स्पंदन की मूल प्रेरणा तथा जगद्-उपवन से

मुझे इसे 'कुसुम-कलियों' को परखना है । उसका संवेदनशील हृदय करुण-भावना से उद्वेलित हो उठता है —

"जग पीड़ित है अति सुख से, जग पीड़ित रे अति दुख से,
मानव जग में बँट जावें सुख दुख से औ दुख सुख से !!"

दुःख को वे मानव के व्यक्तित्व विकास का प्रधान उपकरण मानते हैं—आत्मोल्लास दुःख से ही होता है—

"दुख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन ।
दुख के तम को खा खाकर, भरती प्रकाश से वह मन ॥

लेकिन 'छायावाद' इस वेदना-विवृत्ति में निराश हो जीवन की आस्था खो बैठा था इसे पंतजी ने फिर से आत्म-विश्वास का मंत्र सुनाया—

"जग जीवन में उल्लास मुझे, नव आशा नव अभिलाष मुझे ।
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे, चाहिए विश्व को नव-जीवन ॥"

इस नवीन 'ज्योतिर्मय जीवन' का जग के उर्वर आँगन में स्वागत के लिए कवि आमंत्रण देता है ।—कवि का रहस्यवादी दृष्टिकोण भी बीच-बीच में अपना रश्मि-राग बिखरता चलता है । पंतजी का रहस्य प्रकृति-प्रसूत है उसमें साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं—उन्मुक्त सहज भावोद्रेक है । वे इस प्रकृत सत्ता को किसी अव्यक्त, अज्ञात चेतन सत्ता से स्पंदित—प्राणित मानते हैं । प्रकृति के उपादानों का प्रतीक रूप में ग्रहण करके वे एक विहगिनी को संबोधन करके कहते हैं—

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणि तूने कैसे पहचाना ।
कहाँ कहाँ हे बाल विहंगिनि पाया तूने यह गाना ॥"

प्रकृति के प्रत्यक्ष सौंदर्य-प्रोत दृश्यों में उसे 'मौन-निमंत्रण' सुनाई देता है ।

"न जाने नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन । ....
न जाने मुझे स्वप्न में कौन फिराता छाया जग में मौन ॥
न जाने कौन ?"

उस अज्ञात सत्ता के रूप-कार्य का स्पष्ट आभास कवि को प्राय.

"मै प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जगती के हर्ष-विमर्षों का।"

जीवन मे सुख-दु ख दोनो की सापेक्ष्य महत्ता स्वीकार करते हैं :—
"सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन से ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल हो घन॥"

मुक्ति की कामना दार्शनिको का मूल लक्ष्य होता है, पर पतजी मुक्ति के सुख मे बन्धन के क्षण को साधनात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट मानते हैं — "है मधुर मुक्ति का लघु क्षण पर कठिन मुक्ति का बंधन।" मानव को यह जीवन केवल सुखविलास सकलित करने को ही नही मिला है, उसका ध्येय है आत्मोत्सर्ग। म्लान कुसुमो की मुस्कान फलो में फलित होकर लोकहित मे परिणत होती है, अत. "महत् है अरे आत्म बलिदान, जगत् केवल आदान प्रदान।" मोक्ष को वे आत्म-सत्ता तिरोहित करके परमात्म तत्व में विलीन करना नही मानते। परमानन्द की प्राप्ति अद्वैत स्थापन से नही हो सकती, अत: वे जीवन के तट पर उस मोती की मछली के रूपाभ का पान करने बैठे रह कर प्रतीक्षा में सुख मानते हैं। "पर मुझे डूबने का डर है, भाती तट की चल जल माली।" प्रेम को आत्म-विकास का प्रधान तत्व मानते हैं—बिन्दु को सिन्धु मे, स्वर को सगीत में, कलिका को वासंती वैभव मे परिणत करने वाला तत्व प्रेम है। प्रेम-प्रसूत वेदना मे ही व्यक्तित्व का विकास है। विश्व-वेदना में गलकर मन.स्वर्ण नवीन प्रतिमा के रूप में निर्मित होता है। अत, पत का जीवन-दर्शन अनुभूति चिन्तन व सूक्ष्मदर्शन से पुष्ट व्यावहारिक दर्शन है।

पत का कला-शिल्प—जैसे भाव-पक्ष व दर्शन-पक्ष में पत-काव्य प्रौढ व सतत विकासशील है उसी प्रकार उनका काव्य रूप-विधान भी पूर्ण है।

कला-शिल्प

भाव-कला का मणि-काचन योग यहाँ प्राप्त हुआ है। शब्दों के संस्कार के साथ संगीत-सौंदर्य अपूर्व है। कोमलकान्त पदावली में

कल्पनात्मक शरीर की शिराओ में प्रकृति-अनुराग रक्त की तरह भरा हुआ है। वही उनके काव्य की सजीवनी शक्ति है। 'मधुवन' में वासन्ती वैभव का हर्षोल्लासमय चित्र है, तरुण हृदय का यौन उभार है।

"आज तन-तन, मन-मन हों लीन,
प्राण सुख सुख, स्मृति स्मृति चिरसात्।
एक क्षण अखिल दिशावधि हीन,
एक रस, नाम रूप अज्ञात।"

इसमे युवक-हृदय के भाव-मेघो का घुल-मिल कर विलीन हो जाने का उन्माद है। इस प्रकार के मुक्तको ने छायावादी काव्य को स्वस्थ वातावरण प्रदान किया है।

'महात्माजी के प्रति' में कवि ने उन्हे श्रद्धाजलि समर्पित की है। वर्ग-सघर्ष के इस भौतिकवादी युग मे सत्य अहिंसा के तत्वो से हृदय-परिवर्तन द्वारा वर्ग-मैत्री व सहयोग की प्रेरणा दी है। अतीत के लुप्तप्राय आदर्शों को जन-मन में प्रतिष्ठित करने वाला गाधीवाद एक दीपशिखोदय है। गत सस्कृति का पराभव निश्चित था, उसे पुनर्नवीकरण करने का भार युग-पुरुष गाधी ने लिया। अत,

"पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम जीवन सत्य अहिंसक,
धन्य तुम्हारे श्रीचरणों से धरा आज चिर पावन।"

गीति काव्य और उसकी परपरा—गीति तत्व की प्रधानता के कारण ीति-मुक्तक कहे जाते है तथा इन्हे पाठ्य-मुक्तक से अलग माना है जैसा र स्पष्ट कर दिया गया है। नाना प्रकार के भावोन्मेष वीचि-विलास नाभस तरग (Etherial Waves) के समान मानस में उद्वे-त होते है तो उनकी अभिव्यजना गान में होती है। गुप्तजी गान की परि-षा देते हुए कहते है-'रुदन का हँसना ही तो गान।'— 'रुदन' यहाँ कोमल वों की झझा का प्रतीक है। हृदय की कोमल अनुभूतियाँ जब सरस ीतात्मक पदावली में मुखरित हो उठती है तब गीतिकाव्य की सृष्टि ती है। यह आँसू की तरलता वाले स्वरो का नृत्य है। सुख-दुखो की

"मुझे न अपना ध्यान, कभी रे रहा न जग का ध्यान,
· · · गान ही में रे मेरे प्राण, अखिल प्राणों में मेरे गान ।।"

प्रस्तुत संकलन में पंतजी की चार [illegible] श्रेष्ठ कविताएँ अध्ययन के लिए संकलित की गई हैं। उनमें भाव व विचार का निरूपण इस प्रकार है—

'[illegible]' में [illegible] कवि जन-मानस में उद्भूत भावोर्मियों का विश्लेषण करता हुआ निष्कर्ष पर पहुंचता है कि—

"सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुख के करुण शूल—
सुख दुख न कोई सका भूल ।"

इसी प्रकार सुख-दुःख में जीवन दर्शन का मूल-तत्त्व मान्य है—

"जग पीड़ित रे अति दुख से जग पीड़ित रे अति सुख से ।
मानव जग में बँट जायें दुख सुख से औ' सुख दुख से ।।"

वर्तमान जीवन की विकृति की यही जड़ है। एक ओर सुखातिरेक के पंक में फँसा सम्पन्न वर्ग, दूसरी ओर रात-दिन अभावों से जकड़ा दलित शोषित सर्वहारा वर्ग—दोनों अपनी एकांत विधि से दुखी हैं—अपूर्ण हैं। दोनों का—श्रम-विश्राम का—सुखद समन्वय जीवन को शांति देगा। 'नौका विहार' 'गुंजन' की दार्शनिक आध्यात्मिक भूमिका उपस्थित करता है। 'नौका विहार' के शांत-सुखद प्रकृति-चित्रण को देकर उसका दार्शनिक निर्देशन इस प्रकार करता है। इस विवर्तन-व्यावर्तनशील जगत् के दृश्यमान परिवर्तन के मूल में शाश्वत नियम है।

प्रस्तुतांश

"इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम ! . . . .
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण करता मुझको अमरत्व दान !"

'पावस में वर्षा' में इनका सर्वोत्कृष्ट प्रकृति-चित्रण हुआ है। वैसे पंतजी का सबसे अधिक प्रिय गीत है—'संध्या तारा'। पंतजी के भाव-

कल्पनात्मक शरीर की शिराओं में प्रकृति-अनुराग रक्त की तरह भरा हुआ है। वही उनके काव्य की संजीवनी शक्ति है। 'मधुवन' में वासन्ती वैभव का हर्षोल्लासमय चित्र है, तरुण हृदय का यौन उभार है।

> "आज तन-तन, मन-मन हों लीन,
> प्राण सुख सुख, स्मृति स्मृति चिरसात् ।
> एक क्षण अखिल दिशावधि हीन,
> एक रस, नाम रूप अज्ञात ।"

इसमें युवक-हृदय के भाव-मेघों का घुल-मिल कर विलीन हो जाने का उन्माद है। इस प्रकार के मुक्तकों ने छायावादी काव्य को स्वस्थ वातावरण प्रदान किया है।

'महात्माजी के प्रति' में कवि ने उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित की है। वर्ग-संघर्ष के इस भौतिकवादी युग में सत्य अहिंसा के तत्वों से हृदय-परिवर्तन द्वारा वर्ग-मैत्री व सहयोग की प्रेरणा दी है। अतीत के लुप्तप्राय आदर्शों को जन-मन में प्रतिष्ठित करने वाला गाधीवाद एक दीपशिखोदय है। गत संस्कृति का पराभव निश्चित था, उसे पुनर्नवीकरण करने का भार युग-पुरुष गाधी ने लिया। अत',

> "पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम जीवन सत्य अहिंसक,
> धन्य तुम्हारे श्रीचरणों से धरा आज चिर पावन ।"

गीति काव्य और उसकी परंपरा—गीति तत्व की प्रधानता के कारण ये गीति-मुक्तक कहे जाते हैं तथा इन्हें पाठ्य-मुक्तक से अलग माना है जैसा ऊपर स्पष्ट कर दिया गया है। नाना प्रकार के भावोन्मेष वीचि-विलास या नाभस तरंग (Etherial Waves) के समान मानस में उद्वेलित होते हैं तो उनकी अभिव्यंजना गान में होती है। गुप्तजी गान की परिभाषा देते हुए कहते हैं–'रुदन का हँसना ही तो गान।'— 'रुदन' यहाँ कोमल भावों की क्षमता का प्रतीक है। हृदय की कोमल अनुभूतियाँ जब सरस सगीतात्मक पदावली में मुखरित हो उठती हैं तब गीतिकाव्य की सृष्टि होती है। यह आँसू की तरलता वाले स्वरों का नृत्य है। सुख-दुखों की

तीव्रतम अनुभूति संगीत में होती है। यह प्राणों की पुकार व आत्मा का आह्वान है। प्रेम-विरह, करुण शांत आदि कोमल भाव ही इसकी आत्मा है। उग्र व रुद्र भाव से संगीत उत्पन्न नहीं होता। आनन्दोन्मत्त या शोक-विह्वल हृदय से ही संगीत के

गीति-काव्य

स्वर फूटते हैं। वैसे 'एकोरसः करुण एव' से काव्य का मूल करुण ही माना जाता है पर गीति-काव्य विशेषतः करुण प्रधान होता है। क्रौंच वध का शोक श्लोक में परिवर्तित हो गया। आत्माभिव्यंजन इसमें प्रधान होने के कारण कवि की व्यक्तिगत अनुभूति जब लोक-सामान्य भाव-भूमि पर आकर सर्व-संवेद्य बन जाती है तभी उसमें भाव-प्रवणता आती है। गीति-काव्य के प्रमुख तत्व ये हैं:—तीव्र भावोद्रेक, आत्माभिव्यक्ति, गेयता, सरस कोमल पदावली, भावान्विति, सूक्ष्मता, कोमल भावना। इन बिन्दुओं को रेखा के रूप में देखें तो सर्वप्रथम भावावेग की तीव्र अनुभूति ही गीति का प्राण है। तीव्रता के अभाव में सहजोद्रेक नहीं होगा। आत्मनिष्ठता इसका दूसरा तत्व है। वैयक्तिक अनुभूति ही अधिक संवेदनशील होकर अभि-व्यक्त हो सकती है। संगीतात्मकता इसका परिधान है। तालालयाश्रय गान में ही भावों के छायालोक आबद्ध किये जा सकते हैं। पदावली का प्रसाद-मधुर होना भी परमावश्यक है। पत्तों का मर्मर तथा निर्झर का कलकल ही प्रकृति का संगीत बन सकता है। उस पद में एक भाव व मनोदशा या कल्पना की कसक आनी चाहिए। प्रभावैक्य के लिए भावान्विति अपेक्षित है। पद में संक्षेप या सूक्ष्मता भी होनी चाहिए, विस्तार तन्मयता में बाधक होता है। प्रत्येक भावों से संगीतात्मक रचना नहीं हो सकती। इसके लिए कोमल करुण भाव ही मुख्य माने गये हैं। अतः इन तत्वों का प्राधान्य गीति-मुक्तकों में होना आवश्यक है।

गीति काव्य की परम्परा—सामवेद ही संगीत काव्य का मूल है। आर्यों के विस्मय, विनय तथा प्रेम के उद्गार संगीत के स्वरों में फूटे हैं। तत्-पश्चात् कालिदास के काव्य-ग्रंथों में विशेषतः 'विक्रमोर्वशीय' में गीति-काव्य

मुक्तक मिलते हैं। ताल-राग-बद्ध गान सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से जयदेव के 'गीत गोविन्द' में मिलते हैं। वह स्वयं अपने विषय में कहता है —

"यदि हरि स्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलं,
मधुर कोमलकान्त पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वती।"

पर इसमें "रति सुख सारे गतमभिसारे मदन मनोहर वेशं" तथा "घनजघनस्तनभारभरे" के विलास चित्र अधिक हैं "हरिस्मरण" तो बहाना मात्र है। प्रधान लक्ष्य तो 'विलासकला' में कुतूहल वृत्ति का शमन ही है। इसी आदर्श को सामने रख मैथिलकोकिल विद्यापति ने अपनी पदावली लिखी। राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं के वर्णन में उन्हें इतना भावोन्माद व आत्मविस्मृति हो गई कि वस्तुपरक काव्य होते हुए भी आत्मपरक बन गया। इनमें सौंदर्य व प्रेम की भावना प्रधान है। उनके पदों में विरह की टीस, रूपज्वाल की पिपासा, प्रेमी की विवशता—सबकी आत्म-रस में सिक्त व्यंजना है। उनके भाव, भाषा का संगीत अवर्णनीय है। निर्गुण कवि कबीर के पदों में सरस संगीतात्मकता के स्थान पर रहस्य, योग तथा उपदेश की प्रधानता है, पर फिर भी "झीनी झीनी बीनी चदरिया" जैसे पद लोक-भावना को स्पर्श कर लोकगीत जैसे हो गये हैं। तुलसी में भी विनय नीति की प्रमुखता ने शुद्ध गीति-काव्यात्मकता को आक्रांत कर दिया। मीरा के गीतों में विरहिणी आत्मा की पीडा भरी है। उनमें कोमलकान्त पदावली, व कलात्मक सौष्ठव न होते हुए भी, संगीतशास्त्र के नियमों का निर्वाह न होते हुए भी, अनुभूति की तीव्रता व आकुलता के नैसर्गिक सौंदर्य से जनमानस का भाव-वैभव विलसित हो रहा है। मीरा के ये गीत लोककंठ में नृत्य करते रहते हैं —

"बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनिमूरत सांवलि सूरत नैना बने विशाल।"

या

"हरि मैं तो प्रेम दिवाणी मेरो दरद न जानें कोय।"

गीति-काव्य

पदलालित्य व भाषा संस्कार न होते हुए भी भावना की सचाई पूर्णतः है। सूर-साहित्य तो मुख्यतः संगीतात्मक ही है। इनमें संगीतशास्त्र की शुद्धता तथा व्रजभाषा का सरस प्रवाह दोनों हैं। भावों में वात्सल्य, शृंगार व वियोग प्रधान है—

"निस दिन बरसत नयन हमारे—

सदा रहत पावस ऋतु हम पै जब तें स्याम सिधारे।"

करुण हृदय की मार्मिक पुकार है। भक्त हृदय की भाव-सरिता सहृदयों को सुधा-स्नान का अवसर देती है। कूट गीतों में शुष्कता व नीरसता आ गई है। रीतिकाल में वैयक्तिक अभिव्यक्ति न होने से संगीत-प्रधान काव्य-प्रणयन न हुआ। रागात्मक संवेदन के अभाव ने भी गीति-काव्य-सृजन में विघ्न डाला। आधुनिक काल का गीति-काव्य भारतेंदु से प्रारम्भ होता है। उनके नाटकों में गेय पदों की प्रचुरता है। गीति-काव्य भाव-दृष्टि से दो प्रकार का सामने आया। एक तो वैयक्तिक अनुभूति की कोमल अभिव्यंजना के रूप में; दूसरा देश प्रेम, राष्ट्रगान, भारत माता की वन्दना के रूप में। 'प्रेम-घन' तथा 'पाठक' के गीत-माधुर्य लोक-स्मृति में अब तक हैं। रीति के पंकिल शृंगार से निकालकर कवि-रुचि को प्रकृति व प्रेम का भाव क्षेत्र दिखाने में इन गीतों ने मार्गदर्शक का काम किया। सत्यनारायण 'कविरत्न' के व्रजभाषा के पद श्रोताओं को रसमग्न कर देते थे, जैसे "माधव अब न अधिक तरसैये।"

छायावादी युग के प्रारम्भ ने गीति-काव्यों को पय-पूरसा भर दिया। 'गीतांजलि' के गीतों की धूम ने 'खड़ी' को उत्साहित कर गाने के लिये प्रेरित किया। अंग्रेजी साहित्य के रोमांसवाद ने प्रेम-गीत (Love lyrics) की ओर कवियों को आकर्षित किया। हिन्दी के पास गीति-काव्य की एक युग-युग से उपासित परम्परा 'गेय पदों' के रूप में चली आ रही थी। इस नूतन काव्य शैली ने उसे नवीन संस्कार दिये। अब भाव-प्रसार के युग में काव्य क्षेत्र केवल प्रेम, भक्ति तथा विरह ही नहीं रहा परन्तु देश, राष्ट्र, प्रकृति प्रेम के क्षेत्र भी खुल गये। पर

वर्तमान युग में गीति

छायावादी प्रवृत्तियों का प्राधान्य इन गीति-मुक्तकों में रहता ही है। उनमें ललितपद विन्यास, संगीतात्मकता, रहस्यानुभूति, परोक्ष सत्ता का संकेत, सौंदर्य व प्रेम की प्रवृत्ति समस्त उपादानों का समावेश पाया जाता है। गुप्त-जी ने भी गीति-काव्य के क्षेत्र में अपूर्व कौशल प्राप्त किया है।

"दोनों ओर प्रेम पलता है।

सखि ! पतंग भी जलता है औ' दीपक भी जलता है।"

अपने व्यक्तित्व का अद्वितीय है। इसी प्रकार,

"सखि, वे मुझ से कह कर जाते !

कह तो क्या वे मुझको अपनी पथ बाधा ही पाते।"

—में अनुताप सिसक रहा है। प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध, असीम के संकेत, राष्ट्र-प्रेम आदि की भी मार्मिक व्यंजना इन गीतों में हुई है।

'प्रसाद' के गीतों का साहित्य बड़ा विशाल है। उन्होंने तो अपने नाटकों के गीतों में स्वरलिपि के संकेत भी दिये हैं।

"आह ! वेदना मिली विदाई।

मैंने भ्रमवश जीवन संचित मधुकरियों की भीख लुटाई।"

में अगरु-धूम्र रेखा की तम में विलीन होने की व्यथा झंकृत हो रही है।

"अरुण यह मधुमय देश हमारा !

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।"

इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र गीत भी उन्होंने लिखे जिनमें हृदय की समस्त सरसता, कोमलता संगीत के साँचों में ढली हुई है।

"बीती विभावरी जाग री !

अंबर पनघट में डुबो रही तारा घट ऊषा नागरी"

उनका प्रसिद्ध गीत है। स्थानाभाव से अधिक उद्धरण देने की असमर्थता है। इसमें 'उप मुक्त' के सौन्दर्य में छायावादी मानवीयता को सक्रान्त कर सर्व-संवेद्य रूप दिया है। 'निराला' ने भी गीति-काव्य की भावना को अपने काव्यों में प्रश्रय दिया है। उनके मुक्त छंदों में भी लय-प्रधानता है।

"भारति जय विजयकरे !
कनक शस्य कमलधरे !'
अथवा-डोलती नाव, प्रखर है धार,
संभालो जीवन खेवनहार !"

में भक्त भावुक हृदय का आत्म-समर्पण व दैन्य-दर्शन किसी भी सहृदय की अश्रु-अंजलि का पात्र हो सकता है। "जागो फिर एक बार" में नस-नस में आत्मोत्सर्ग करने की भाव-सचार शक्ति है। पंतजी की संगीतात्मक अभिरुचि का ऊपर निदर्शन हो चुका है। समस्त 'गुंजन' उनके "प्राणों के उन्मन-गुंजन" की प्रति-स्वरलिपि है। 'गुंजन' का उपक्रम व उपसहार इसी स्वर-सधान का आरोह-अवरोह बिन्दु है।

"गान ही में रे मेरे प्राण, अखिल प्राणों में मेरे गान।"

उनकी एक अमर गीति-कृति 'मौन-निमन्त्रण' है। इसमें रहस्य के पुट ने सरसता को और आर्द्र कर दिया है। "लाई हूं फूलों का हार" मे प्रकृति अपने यौवन, शृगार, सौन्दर्य को 'क्रय-विक्रय' से मुक्त स्वच्छंद लुटा रही सी प्रतीत होती है। गीतिकार के रूप में डा रामकुमार वर्मा ने प्रभूत प्रसिद्धि पाई है। उनके गीतो में प्रेम, विरह, जिज्ञासा, रहस्य सब कुछ है। "एक दीपक किरण कण हूं" में जीवात्म सत्ता के सापेक्ष व्यक्तित्व का निरूपण है। "मै तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं"—मे प्रेमी के अन्तर की विवशता मँझधार में ही किनारा ढूढ रही है।

"गीतिमय निर्झर बनूं मैं,
प्रिय तुम्हारा स्वर बनू मैं।"

इसमें विश्वास व आस्था के स्वर है। श्री सियारामशरण ने भी वर्तमान हिन्दी साहित्य को 'गीत' अर्घ्य देकर सम्मानित किया है। इनमें दार्शनिकता तथा बौद्धिकता अधिक है। इनके गीतो पर 'गीताजलि', प्रसाद के 'कानन कुसुम' तथा रायकृष्ण दास के गद्य गीतो का छाया प्रभाव है।

"कैसे पैर बढ़ाऊं मैं—
इस घन-गहन विजन के भीतर, मार्ग कहाँ से पाऊँ मैं !"

श्री हरिवंशराय बच्चन ने कई गीति-संग्रह प्रकाशित किये हैं—उनके गीतों में सरलता, सरसता तथा मार्मिकता रहती है। 'मधुशाला, मधुबाला, निशा निमंत्रण, एकांत संगीत' आदि छोटे-छोटे प्रगीत-मुक्तक के ग्रंथ लोक-रसना पर नृत्य कर रहे हैं। "वह पग ध्वनि मेरी पहिचानी" बड़ा प्रसिद्ध गीत है। इन गीतों में चित्र, नाद, काव्य सब का सौंदर्य संकलित है। "**तीर पर कैसे रुकूं मैं, आज लहरों में निमंत्रण!**" में वह अपनी कल्पना का मूर्त आधार छोड़ कर तरल पथ को अपनाता है। 'निशा निमंत्रण' विधुर हृदय का पलकों से क्षारक अग्निकण चुनने का उपक्रम है। 'इस-पार, उस-पार' भी बड़ा मार्मिक गीत है। 'सतरंगिनी' में यह गीतात्मकता पूर्ण विकसित हो रही है। और भी कवि इस क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर रहे हैं, पर स्थानाभाव से हम उनका निर्देश नहीं कर सकते। इस 'प्रगीत-मुक्तक' के क्षेत्र में सुश्री महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व सबसे निखरा उभरा है, अतः इस काव्य-विधा के प्रतिनिधि के रूप में हम उन्हें अपने अध्ययन का विषय बना रहे हैं। मध्ययुगीन मीरा की प्रेम-साधना महादेवी में प्रतिफलित हुई है।

सुश्री महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व—भक्तिपूत माता व कर्मनिष्ठ पिता के आदर्शों ने इनके बाल संस्कारों का निर्माण किया। अध्ययन तथा चिंतन इनकी साधना के प्रधान उपकरण रहे हैं। संस्कृत व अंग्रेजी का प्रभाव इनकी साधना पर अंकित है। भारतीय अद्वैत तथा बौद्ध दुःखवाद ने मिलकर इनके करुणापूर्ण दर्शन का निर्माण किया है। भूत जगत् के अभाव की तीव्र अनुभूति तथा मीरा-भावना के प्रति अनुराग ने मिलकर इनके रहस्य को स्फूर्ति दी। इनका व्यक्तित्व सरलता, सहृदयता, व करुणा से बना है। श्रीमती वर्मा के गीति-काव्य में गीत के सामान्य तत्वों का समाहार तो है ही—पर इस क्षेत्र में उनका स्वतन्त्र योगदान भी प्रभूत है। इस पीड़ामय संसार की अधिष्ठात्री वे स्वयं हैं। उनके गीतों के कुछ विशेष उपकरण ये हैं—वेदनामय विधान, प्रकृति के संकेत से रहस्यात्मकता, कल्पना की

महादेवी

निस्सीम परिधि, भावों की चित्रात्मक संश्लिष्ट योजना, बौद्धिक-दार्शनिकता, लक्षण-सगुण पदावली, सरस संगीत . . . . इनका पंचामृत हैं। इनका काव्य रसायन है। इन तत्वों पर अन्तर्केन्द्रित आलोक अपेक्षित है। (१) वेदना-वितान—इनके संपूर्ण काव्य-मंडल पर छाया हुआ है। प्रत्येक गीत सौर-मंडल में आलोकित नक्षत्र है जिसका वायुमंडल वेदना-विवृत्ति है। वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हुए भी एक व्यापक तेज पुंज के अग्निकण हैं—इसी प्रकार इनके गीत इनके जीवन की वेदना के स्फुलिंग हैं। वेदना का पाथेय लेकर इनकी भावना कण-कण से रागात्मक परिचय कर लेना चाहती है। वेदना ने इनको वाणी का वरदान दिया, वाणी ने वेदना का मधु पाया। वेदना की वीणा पर इन्होंने जन मन के तारों को झंकृत करने वाली रागिनी छेड़ी है। "तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा, तुममें ढूंढ़ूंगी पीड़ा।" पीड़ा, प्रियतम को प्राप्त करने का प्रथम अवलंबन है। "मधुर मधुर मेरे दीपक जल" में कितना करुण उच्छ्वास है! समस्त विरहिणी जीवात्माओं की पीड़ा उनके अंतर में समाविष्ट हो गई। वे स्वयं कहती है—

"मेरी आहें सोती हैं इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में।"

इसमें वेदना की सवेदनशीलता की सुरक्षा हुई है अन्यथा 'उर्दू-शायरी' का उपहास मात्र रहता।

(२) प्रकृति के संकेतों से रहस्यात्मकता—श्रीमती वर्मा को प्रकृति का प्रत्येक रूप प्रियतम का सकेत देता है। उषा-सांझ की धुंधली यवनिका प्रकृति प्रेयसी व अज्ञात प्रियतम की प्रणय केलि का मच बनाती-सी प्रतीत होती है। राका-अमा भी प्रियतम के मौन अभिसार का सकेत पाने आवर्तन-विवर्तन करती है। इनकी विरहिणी-भावना, शशि-दर्पण में देख-देख कर तिमिर-केशों को सुलझाया करती है। पावस को रूपसि प्रेयसी से प्रणयामंत्रण किया

विशेषताएँ

गया है। प्रकृति भी इनकी भावना की प्रतिकृति है—दोनों सखियों का एक ही लक्ष्य है—प्रियतम से मिलन। उनमें सापत्न्य द्वेष की भावना नहीं, परस्पर सखी भाव है। एक की करुण-कातरता को दूसरा दूर करने का प्रयत्न करता है। प्रकृति उद्दीपन के रूप में भी आती है, पर वह स्वयं कवि की भावना से संवेदित-स्पंदित होती प्रतीत होती है। प्रत्येक प्रकृति तत्व में "वह कौन है ?" यह अनंत का आभास दीखता है। "स्वप्नशाला में यवनिका डालकर, तब दृगों को खोलता वह कौन है ?" तारक अपलक दृष्टि से किसके आगमन की चिर-प्रतीक्षा करते हैं ? इस प्रकार प्रकृति के परिवर्तन-विवर्तन-उद्वेलन, आकुंचन-विकुंचन में प्रणय अभिसार के संकेत प्रतीत होने रहते हैं। उनकी भावना प्रियतम के साथ *विरह-मिलन के श्वासोच्छ्वास की आँख-मिचौनी खेलती हुई अनंत* रहस्यात्मक प्रतीक चित्रों की योजना करती हैं।

"विरह में मोम सा तन घुल चुका है, अब दीप सा मन जल चुका है;
चेतना का स्वर्ण जलती वेदना में गल चुका है।"

(३) कल्पना की असीम-परिधि—वैसे तो समस्त छायावादी काव्य कल्पना-प्रचुर है पर महादेवीजी के पास गीति-तूलिका के लिए अनंत अपार रंगों की कल्पना-कटोरियाँ हैं जिनमें विविध छायालोक के भाव-चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। कल्पना इतनी सशक्त, सूक्ष्म व सात्विक है कि मूर्त का अमूर्त विधान तथा अमूर्त का मूर्त विधान तत्काल विद्युदुन्मेष से हो जाता है। संगीत की भाव सघनता व ऐक्य के लिए प्रतीकों की योजना की गई है। इनके काव्य का समस्त अप्रस्तुत विधान कल्पना की कला है जैसे जगत् निर्माण की चातुरी माया में है। ब्रह्म अपनी शक्ति माया से अनंत आभासों की जिस प्रकार रचना करता है उसी प्रकार ये अपनी कल्पना से भाव जगत् को नाम रूपात्मक सत्ता प्रदान करती है। कहीं अस्पष्ट प्रतीकों की योजना से कल्पना दुरूह, क्लिष्ट हो गई है।

(४) भावों की चित्रोपम संश्लिष्टता—इनका भाव जगत अपने रंगों में अनंत, रंगों में नवीन, अपनी सूक्ष्मता में अद्वितीय है। भावों का सौर-चक्र

अधिकतर वेदना की परिधि में घूमता सा प्रतीत होता है पर प्रत्येक संवेदना, अनुभूति, मनोदशा अपने में नवीन है। इन्होंने स्वप्निल संसार के सौन्दर्य को अपने भाव-चित्रों में बाँधने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक भाव प्रियतम के पास प्रेषणीय मनोव्यथा का संदेश-पत्र बना दीखता है, फिर भी उसे असंतोष ही बना रहता है। ये एक गीत में कहती हैं—

"कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती ?
दृग जल की सित मसि है अक्षय,
मसि प्याली झरते तारक द्वय;
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर सुधि से लिख श्वासों के अक्षर;
मैं अपने ही बेसुधपन में लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।"

कितना मार्मिक भाव-चित्र है उस मनोदशा का जब असंख्य भावोर्मियाँ मानस को उद्वेलित करती है। प्रियतम को आक्रोश-उपालभ देने का विचार आता है पर 'कलेजा' कागज पर नही उतरता। अन्तर की ऊमस उष्ण उच्छ्वासो में या शीत अश्रुओ में बह जाती है। सूर की भाव विह्वल गोपियो के लिए भी भावना का आदर्श यहाँ उपस्थित है। इन भावों में आद्यंत एकान्विति तथा रस-परिपाक मिलेगा। चित्रात्मक संश्लिष्ट प्रभाव मानस पर अंकित करना इन गीतो का लक्ष्य है। चित्रोपम सूक्ष्म विस्तार (minute details) के साथ समन्वित प्रभाव अंकित करने की भाव योजना है।

(५) **बौद्धिक दार्शनिकता**—देवीजी के गीतो में चिन्तन पक्ष भी उतना ही प्रौढ़ व सशक्त है जितना रहस्यमय भावन। इनके दर्शन में शंकर के अद्वैत तथा बौद्ध की करुणा का पाणिग्रहण है। निर्गुण ब्रह्म इस प्रकृति व मानव जगत् का मूल आधार है। माया-मकडी ही अपने उर के तिरगे तारों से जग-ज्जाल का ताना-बाना बुनती है तथा उसमें बंदिनी बन जाती है। जीवात्म-परमात्मतत्व मूलत एक है, पर माया के आरोप से भिन्नवत् प्रतीत होते हैं। विश्वव्यापिनी करुणा से मैत्री करने से ही निर्गुण निर्बंध प्रियतम भी सगुण-बद्ध सत्ता को भाव-कारा मे बाँधा जा सकता है। पर बुदबुद क्या सागर के

र्शनत्व को व्यक्त करते हैं। आत्मा, "अनुपम कोमल कहाँ तू आ गई सुन्दरी री ?" परम तत्व से बिछुड़ कर भटक रही है। पर तो "इन साँस का इसे प्रमातो सब जलने दो" अपने को मिटाकर ही चिरन्तन को पा सकेगी। दर्शन के इनके रहस्यात्मक माधुर्य को गन्ध का सौन्दर्य दिया है, अन्यथा ये आकाश केवल 'शिव स्वप्न' मात्र बने रहते। "मैं तुम से हूँ एक, एक हैं जैसे रश्मि-प्रकाश" से अद्वैततत्व मुखरित हो रहा है। पर वर्तमिनी बद्ध सत्ता के महत्व के साथ आत्म-महत्ता भी स्वीकारती है।

"उस असीम को आती हूँ मेरी लघुता पर पीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो क्या पाल सकेंगे पीड़ा ?"
तथा
"उसमें अनन्त करुणा हूँ मुझ में अनन्त सूनापन।"

(६)—इनके काव्य की अन्य विशेषता इनकी भाषा-छंद-रस संगीत आदि कला-शिल्प से सम्बन्ध रखती है। इस क्षेत्र में भी श्रीमती वर्मा की देन अद्वितीय है। शब्दों की वासक-सज्जा अपने प्रिय भावों को आत्मसात् करने के लिए व्यग्र रहती है। सरल दैनिक प्रयोग की पदावली भी कितनी प्रभावशालिनी हो सकती है और यह वासवदत्ता के समान आचरण करती है। अचल, साम्य तथा अविच्छिन्नपूर्व स्वर-संधान करते ही प्रसाद-माधुर्य का सारस्वत-वेग उमड़ता चला आता है। इनकी भाषा में प्रकृति के चिरपरिचित तत्व प्रतीक-विधान से प्रयुक्त किये गये हैं। प्रतीकों की भाषा की बोधगम्यता बहुत कुछ पात्र के बौद्धिक संस्कार पर निर्भर करती है। लाक्षणिक अभिव्यंजना व ध्वनि का प्रयोग प्रचुर है —

"आँखों की नीरव भिक्षा में, आँसू के मिटते दागों में!
ओठों की हँसती पीड़ा में, आहों के बिखरे त्यागों में!
कण-कण में बिखरा हूँ निर्मम, मेरी आँखों का सूनापन!"

भावनाओं के मानवीकरण से अमूर्त भाव भी मूर्तिशिल्प का माध्यम लेकर हमारी आराधना का लक्ष्य बनता है। शब्द चयन से काव्य में चित्रकला का आरोप तथा इनके चित्रों में काव्यकला नियोजित है; इसी प्रकार संगीत का माधुर्य भी अपूर्व है। इनकी वाणी को वेदना का मधु, चित्र की विविध

"मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर।"

मीरा भी प्रियतम को पाने मे इतनी ही विकल, उन्मत्त तथा आत्म-विस्मृत है, पर महादेवी का प्रियतम सगुण-साकार न होकर निर्गुण-असीम-निराकार है फिर भी वह आत्मसत्ता को समर्पण कर देती है—

"विसर्जन ही है कर्णधार, वही पहुँचा देगा उस पार।"

असीम-ससीम की यह आँखमिचौनी अनत रूप-रगो में प्रकृति के सौन्दर्य पट पर अंकित हो मिटती जाती है, पर उसके सकेत-बिन्दु मानस पर अमिट रहते हैं। यह रहस्य सूफियो के या कबीर के साप्रदायिक व साधनात्मक रहस्यवाद वाला नही है, न यह रहस्यवाद केवल भक्ति व प्रेम की भित्ति पर टिका हुआ है जैसे मीरा का। परतु इसमें दर्शन, भक्ति, प्रेम, दापत्य सब घुल-मिलकर भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि करते है। वे प्रतीक भाषा में प्रिय आगमन-स्वरूप को अभिव्यक्त करती है—

"करुणामय को भाता है तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो तुम पल भर को बुझ जाना।"

बाह्य सत्ता के नितांत तिरोभाव में परात्म सत्ता का प्रकटीकरण होता है। महादेवी की आकुल अतर की वेदनामयी धमनी ने निर्गुण निराकार में भी सवेदना के स्पदन जागृत कर दिये है। वह साधना के इस दीप को स्निग्ध आमत्रण देती हुई कहती है :—

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रतिपल प्रतिक्षण,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सारे शीतल कोमल नूतन, माँग रहे तुमसे ज्वाला कण;
विश्व शलभ सिर धुन कहता,
मैं हाय न जल पाया तुममें मिल।"..........

महादेवी के संकलित गीत—'विरह का जलजात जीवन' में जीवन के उद्‌गम स्रोत की व्याख्या है। वेदना से इसका जन्म, करुणा में

निवास। उषारश्मि इसके आँसुओ को पोंछती है। रात्रिरमणी आँसुओ को गिनती है। अश्रु जीवन की आद्यत व्याख्या है। इसमे भारतीय सस्कृति के प्रतीक 'जलजात' को जीवन का रूप दिया है जो बडा मार्मिक व सुन्दर है। इस जलजात का सार्थक्य इसी में है कि यह प्रियतम की पूजा के लिए समर्पित हो सके।

—'बीन भी हू मं तुम्हारी रागिनी भी हू' इसमे भारतीय दर्शन का रहस्यवादी निरूपण है। जीव उस परमात्मा के द्वारा निर्मित भौतिक उपादानो की समष्टि भी है और चेतन सत्ता की समष्टि भी। उसका शरीर (बीन) भी उसी के तत्वो से बना है तथा उसका अध्यात्म चेतन तत्व (रागिनी) भी उसी का है। ईश्वर जगत् का उपादान व निमित्त कारण दोनो है। दोनो एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी अभिन्न है। "दूर तुमसे हूं अखंड सुहागिनी भी हूं।" प्रतीयमान पृथक् सत्ता के मूल में अद्वैत सत्ता है। यह विरोधाभास जीवन के शाश्वत सत्य की व्याख्या है। अन्त में तो यहाँ तक हो जाता है कि—

पाठ्य गीतिकाएं

"पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी।"

समस्त भिन्न सत्ताएं एक तत्व में तिरोहित हो जाती है।

—"मधुर मधुर मेरे दीपक जल!" यह चिर ज्वाला पीडामयी विरहिणी आत्मा का साधना-गीत है। इसमें कितनी दृढ़ता, मृदुता, करुणा तथा विवशता है। इस साधना-पथ का लक्ष्य है—

"युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल;
प्रियतम का पथ आलोकित कर!"

अन्त में अपने जीवन-दीप की निर्वाणोन्मुख प्रतिभा देकर आश्वासन के स्वरो में आत्मबोध करती है—

"तू जल जल जितना होता क्षय, वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू उसकी उज्ज्वल स्मित में घुलमिल!
.... मधुर मधुर मेरे दीपक जल!"

प्रगतिवाद : मानव अपनी नग्न विकृतियों, भग्न आशाओं व शीर्ण आदर्शों से इस भव में भ्रान्त सा ही भटक रहा है। इस विश्व में एक ओर समस्त विलास-वैभव, ऐश्वर्य; दूसरी ओर दैन्य, दारिद्रय व अभाव का नग्न नृत्य ! इस यथार्थवादी युग-संघर्ष की ध्वनि साहित्य में आना आवश्यक था। अब काव्य का केन्द्र मानव तथा उसके व्यक्तिगत सुख-दुःख न होकर उसमें समाज तथा उसकी समग्र चेतना प्रतिबिंबित होने लगी। इस वाद की परिभाषा कई प्रकार से दी गई है। "वह साहित्य जो व्यक्ति को संस्कारों से, समाज को व्यक्तियों से और राष्ट्र को अर्थदास्य से मुक्त करता चले—प्रगतिशील साहित्य है।" इसमें व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के नवीन आदर्श-चेतना व जीवन-दर्शन की झलक है। आज का व्यक्ति रूढ़ परंपरागत संस्कारों से आक्रांत है, समाज कुछ शक्तिशाली, संपन्न व्यक्तियों से आक्रांत है और राष्ट्र राजनीतिक प्रसूत अर्थ-दासता में निर्जीव-सा हो रहा है। इस समस्त की मुक्ति, शुद्धि व नवीन संस्कार प्रगतिवादी विचारधारा का लक्ष्य है। अतः,

प्रगतिवाद — *प्रगतिवाद में प्रतिशोध, प्रतिकार, संघर्ष-विनाश तथा ध्वंस का शंखनाद अधिक है; नव समाज-सर्जना के आदर्शों की रूपरेखा इसके पास नहीं।*

कई आलोचक कहते हैं कि "राजनीतिक क्षेत्र का समाजवाद साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से विख्यात हुआ।" अतः, प्रगतिशील साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं जो छायावाद से स्पष्टतः भिन्न प्रकार की होने से पृथक् अभिधान में मानी गईं —

(१) सूक्ष्म कल्पना-प्रसूत भाव-जगत् के स्थान पर वस्तु-जगत् का निरूपण। (२) आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद का आग्रह। (३) व्यक्तिवाद के स्थान पर समाज व मानवता की प्रतिष्ठा। (४) सम्भ्रान्त अभिजात वर्ग के स्थान पर शोषित दलित वर्ग। (५) रहस्यानुभूति के स्थान पर बौद्धिक समाधान। (६) आध्यात्मिक दर्शन के स्थान पर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन। (७) विगत निराशारोदन व नियतिवाद के स्थान पर प्रतिक्रियात्मक प्रतिशोध, विरोध, क्रान्ति, विनाश तथा कर्मण्यता की प्रेरणा। (८) साहित्य

के '[illegible]' तथा '[illegible]' के स्थान पर [illegible] तथा [illegible]। (९) 'कमल-नयनों के लिए' के स्थान पर 'कमल जैसे नैनों के लिए, [illegible] के लिए।' (१०) शैली में मौलिक [illegible] के स्थान पर अनेक [illegible]।

इसी का विशेष विवेचन यदि किया जाय तो प्रगतिशील साहित्य छायावाद की प्रतिक्रिया में प्रसूत हुआ, यह मानना पड़ेगा। भाव जगत् व कल्पना की [illegible]-कल्पिता व कुण्ठाओं से ऐसा आभास हो गया कि प्रत्यक्ष जगत व जीवन से उसका सम्बन्ध छूट गया। वह युग-विशेष की संवेदनाओं व समस्याओं को प्रतिबिम्बित न कर सका। अतः [illegible]-भाव तथा [illegible] जगत का [illegible] प्रगतिवाद ने युग की सामाजिक व समष्टि चेतना को प्रश्रय दिया। पूर्वकाल में भाव-वैभव इसमें वस्तु-विभव। पन्त ने कहा है—"भूत विभव पर ही मानव का भाव विभव अवलंबित।" पहले आदर्शों के प्रति अधिक अनुराग था, आदर्श व्यक्ति को नायक मान कर जनता के सामने एक अनुकरणीय चरित्र रखा जाता था। अब मनुष्य की उसकी समस्त दुर्बलता-विकृतियों सहित यथार्थ निरूपण किया गया। स्वर्ग के स्वप्नों के स्थान पर अन्न-वस्त्र के अभाव से निद्राहीन मानव को काव्य में स्थान मिला। पहले "राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है", लेकिन अब "दुर्बलताओं से शोभित मनुष्यत्व सुरत्व से दुर्लभ।" छायावादी काव्य में व्यक्ति के हर्ष-विमर्षों का, राग-विरागों का संवेदनशील चित्र मिलता है, पर प्रगतिशील साहित्य "सामूहिकता निजत्व का धन" लेकर उपस्थित हुआ। व्यक्ति के उद्दाम अहं के स्थान पर सामाजिक दर्शन व चेतना का आदर हुआ। अभिजात वर्ग तथा उसके जगत्-आत्मा-ईश्वर व धर्म के आदर्शों के स्थान पर सर्वहारा दलित वर्ग तथा उसके यथार्थ की ओर अधिक दृष्टि गई। प्रगतिवाद कृषक-श्रमिकों के कंठ से फूटने वाला स्वर है। युगों से मूक मानव को वाणी का वरदान मिला। छायावाद में परोक्षानुभूति तथा जिज्ञासा पर कवियों की विशेष दृष्टि रही, पर विज्ञानवाद व बौद्धिकवाद के इस युग में इसे अमान्य ठहरा कर प्रत्यक्ष दृश्य जगत् तथा उसके मानवीय

मूल-दर्शन

सम्बन्धों की व्याख्या की गई। परमात्म-विकलता के स्थान पर भूख-प्यास से विकल मानव-पशुओं के मूक रोदन को काव्य-उपादान माना गया। बुद्धिगम्य व तर्क-सम्मत विषयों का अधिक समावेश किया गया। पहले के काव्य में भारतीय दर्शन व संस्कृति को आधार मानकर काव्य-रचना हुई। जीव-जगत्-परमात्म के शाश्वत तत्वों पर चिंतन हुआ, जन्म-मरण के मर्मों को खोजा गया; पर आज की युग-चेतना पहले हमारी भौतिक-सामाजिक परिस्थिति व चेतना पर विचार करती है तथा आज के चिंतन ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद या भौतिक विज्ञानवाद जैसे समाज दर्शन को जन्म दिया है। इसे विरोध-विकास जन्य भौतिकवाद (Dialectical materialism) कहा गया है। इसमें स्थिति, प्रतिस्थिति तथा समन्वय के आधार पर भौतिक व सामाजिक अवस्था-धारणा-चेतना में परिवर्तन होता रहता है। सामाजिक चेतना बाह्य संघर्षों को प्रभावित करती है तथा स्वतः भी उनसे प्रभावित होती रहती है। यही मार्क्स का समाजवाद है। इसी का साहित्यिक अनुवाद प्रगतिवाद है। यह वर्ग-वर्ण-संघर्ष को मिटाकर एक वर्ग-वर्णहीन मानवता की सर्जना करना चाहता है। पर इस सर्जना का साधन क्रांति, हिंसा प्रतिशोध है। इसने मानव को नियतिवाद के अरण्य-रोदन से निकाल कर उसे कर्मवादी बनाया। शोषण को सहन करना शोषण करने से बढ़कर जघन्य अपराध व पाप गिना गया। साहित्य केवल स्वान्तःसुखाय न माना जाकर जन-जीवनसुखाय या पर-सुखाय समझा जाने लगा। कल्पनावाद के स्थान पर उपयोगितावाद अर्थात् वाग्विलास के स्थान पर जन-जागरण व लोक-उत्थान का शंखनाद सुनाई पड़ने लगा। कला अब तक व्यक्ति की सौन्दर्य-भावना का विकास करती थी, अब समाज की शिव-भावना का दायित्व वहन करने लगी। शैली में भी परिवर्तन आने लगा। छायावादी छन्द-अलंकार रस ध्वनि की अभिव्यंजना प्रणाली में भी परिवर्तन हुआ। वक्रोक्तिगत सौन्दर्य के स्थान पर सरल [illegible] प्रधान भाषा का प्रयोग मान्य हुआ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रगतिवाद के मूल में प्रतिहिंसा व क्रांति

के स्तर गूंज रहे हैं। लेकिन समाज व राष्ट्र के संक्रान्ति काल में इस प्रकार के विद्रोह व विरोध को एक आगामी आदर्श अन्वेषण के प्रयत्न व अनुसंधान के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है, स्थायी संस्कार व आदर्श के रूप में नहीं। इस नवीनवाद के काव्य-क्षेत्र में घुसकर अराजकता व अशान्ति फैलाने के आचरण को देखकर कई नये-पुराने आलोचकों, साहित्य-सेवियों व मनीषियों के मन में इस वाद के प्रति कई धारणाएँ बनती जा रही हैं जिस पर आक्षेप-प्रत्याक्षेप प्राय होता रहता है।

भारत में योरोप के 'प्रोग्रेसिव स्कूल' के आदर्शों को लेकर प्रगतिवादी संघ की पहली बैठक हुई जिसके सभापति श्री प्रेमचंद हुए। इसके अगले वर्ष सन् '३८ में रवि बाबू प्रगतिशील संघ के सभापति बने। इन लोगो ने भी इस युग-चेतना को मान्यता दी। इसके कई तत्वों में युग की माँग की पूर्ति थी। प्रगतिशील

सुझाव

साहित्य अपने वास्तविक स्वरूप में सामाजिक प्रभावों व चेतनाओं का विश्लेषण कर जनतावाद की प्रतिष्ठा करता है, क्रांति की परपरा को प्रेरणा-शक्ति, अनुभूति को ठोस बौद्धिक आधार देता है। वह मार्क्स के समाज-वाद को एकांगी समझ कर फ्रायड की मनोवैज्ञानिक जीवन-भूमि देता है तथा कठोर वैज्ञानिक चेतना का प्रसार करता है। श्री नंददुलारे बाजपेयी ने इस 'प्रगतिवादी' को कुछ सुझाव सकेत दिये हैं —"परिवर्तन के अन्तर्गत प्रगतिशील शक्तियों को पहचानना, परिवर्तन से उत्पन्न हुई विचारधारा के शब्द-सकेतो का मनोयोग के साथ अध्ययन और प्राचीन प्रगति-शील विचार-धारा की शब्दावली और उसके उद्देश्यों की नवीन उद्देश्यो में तुलना, नवीन समस्याओं का प्रगतिशील हल; प्राचीन के मोह का परित्याग, नवीन समस्याओं के सम्बन्ध में साहित्यिक प्रेरणा उत्पन्न करना, रूढियों के प्रति शका उत्पन्न करना और ह्रासोन्मुखी व अस्तगत होते हुए जीवन के यथार्थ स्वरूप का कलात्मक उद्घाटन !"

आक्षेप

प्रगतिवाद के प्रति विपरीत धारणायें तथा आक्षेप : मुंशी महादेवी अपने आधुनिक काव्य की भूमिका में लिखती हैं :—

"सूक्ष्म स्थूल का समन्वय पूर्ण मानवता का निर्माण करेगा। ...... अध्यात्म विकास अतीत की संस्कृति है, विज्ञान विकास वर्तमान की। एक की विकृति ने मानवता का नाश किया, दूसरे की विकृति ने मानव का। छायावाद के पास जीवन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं, प्रगतिवाद के पास वैज्ञानिक दृष्टिकोण है पर सृजनात्मक भावना नहीं। उसे यथार्थ द्रष्टा के साथ स्वप्नद्रष्टा भी होना चाहिए। छायावाद का भाव-जगत् में पलायन है, तो प्रगतिवाद का चिन्तन-क्षेत्र में पलायन।"

पंत—"प्रगतिवाद उपयोगितावाद का ही दूसरा संस्करण है।" रजनीकांत दास—"साहित्य की यह अति आधुनिकता एक प्रकार की साहित्य की महामारी है . . . .। इसका लक्षण है रिक्तता व असंयमता, अपवित्र मनोवृत्ति, एवं उद्दाम अनाचार।" डा० रामकुमार वर्मा—"हमारे नवीन लेखकों ने गतिशीलता के नाम पर जो उच्छृंखलता पृष्ठों पर रख दी वह हमारे जीवन की नैसर्गिकता से दूर जा पड़ी . उनका चिंतन पक्ष जितना दुर्बल है, भाव पक्ष उतना ही निकृष्ट।" श्री वाजपेयी—"कुछ दिनों के लिए लोकप्रिय हों, पर देश-जाति के स्थायी साहित्य में यह 'निरीह-निर्माण' क्या स्थान पायेगा ?"

वास्तव में इसमें भ्रांतियों व आक्षेपों के छिद्र हैं। इसमें प्राचीन चर्वाक मत "यावज्जीवेत् सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्" का पुनरुत्थान है। नग्न यथार्थ की कुत्साओं का आकर्षक चित्र जिसमें क्षोभ के स्थान पर समर्थन जागृत होता है। इसे साहित्यिक नग्नता की संज्ञा मिली है। इसमें रूस के आदर्शों की अन्ध-भक्ति तथा प्रचार-नारों का घोष है। यह "असंतोष व नैराश्य की पृष्ठभूमि" पर प्रतिक्रियात्मक काव्य रचना बौद्धिकता से बोझिल है। ध्वंस को मूल ध्येय मान कर नव-निर्माण को गौण मानना तथा गद्य की नीरसता तथा कलापक्ष की उपेक्षा इस पर अन्य आक्षेप हैं।

अतः, डा० नगेन्द्र तथा श्री वाजपेयी ने इस प्रगतिवादी वर्ग को तीन

गुणात लिये हैं :—(१) जीवन आस्था, (२) परिवर्तन की पहचान व उत्सार, तथा (३) कलात्मक संयम का नियोजन।

उदाहरण

प्रगतिशील साहित्य के कुछ प्रसिद्ध कलाकार—पन्त, नरेन्द्र, दिवाकर, अंचल, बच्चन, 'सुमन'—इनकी कृतियों में हमें शुद्ध प्रगतिवाद के दर्शन होते हैं।

श्री पन्त—"मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति,
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति।"

या—"आज मनुज को खोज निकालो!
जाति, वर्ण संस्कृति समाज से, मूल व्यक्ति को फिर से पालो।"

श्री नरेन्द्र—'फागुन की आधी रात' शीर्षक कविता में—
"हैं रंभा रही बछड़े से बिछुड़ी एक गाय,
मन भारी हैं दुखते भी हैं।
आता गजनेरी सांड भटकता सड़कों पर चलता मठार
क्या वही दर्द उसके भी है।
जा रही किसी घर के जूठे बर्तन मलकर,
धरधलल कहारी थकी हुई! . . . "

श्री नवीन—
"जिनके हाथों में हल बक्खर जिनके हाथों में हल है।
जिनके हाथों में हँसिया है, वे भूखे हैं निर्धन हैं।"

श्री सुमन—
"निर्बलों का नाद देखो, हिल उठे प्रासाद देखो!
रूढ़िग्रस्त समाज जर्जर चल रही है अंतश्वासा!
आज कवि कैसी निराशा!"

दिनकर—
"गिरे विभव का दर्प चूर्ण हो, लगे आग इस आडंबर में।" (तांडव)
इस प्रकार काव्य के भाव-क्षेत्र में नग्न वस्तु-जगत् का यथार्थ, काम-

महत्वपूर्ण विषयों में उनकी राय अलग-अलग है। ...... वे एक दूसरे की जीवन परिपाटी पर, एक दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हँसते हैं।" इन दो उद्धरणो से प्रतीत होता है कि ये सामाजिक प्राणी नही वरन् प्रत्येक सौर-चक्र में अपना-अपना मार्ग खोजने वाले ग्रह-नक्षत्र-तारक दल हैं। प्रत्येक राह खोज रहा है, प्रत्येक के पास खोजने के साधन, उपकरण भिन्न हैं। अन्वेषण इनका साधन नही, साध्य बन गया। इनकी कुछ प्रवृत्तियों का आकलन इस प्रकार हो सकता है—(१) काव्यवस्तु के विषय में विरोध। (२) नवीनता का आग्रह। (३) सौन्दर्य चयन के क्षेत्र की व्यापकता। (४) उलझी संवेदनाओं को पाठक तक पहुँचाना। (५) बौद्धिकता का बोझ। (६) भाषाशैली के क्षेत्र में विविध प्रयोग।

इसके विषय में कुछ विवेचन आवश्यक है। सर्वप्रथम छायावादी मधुमती भूमिका का तीव्र विरोध हुआ। सूक्ष्म, वायवीय, भावजगत् की अन्तश्चेतना व कल्पना के स्थान पर वर्ग-श्रेणी का तीव्र संघर्ष मुखरित हुआ। काव्य में वस्तु-महत्ता थोड़े से विषयो में सीमित नही रही। प्रयोगवादी की दृष्टि में सूर्य, मेंढक, काँटे व चाय की प्याली, नूपुर ध्वनि और चप्पल—सबका समान महत्व है। समस्त जीवन के विषयो का 'भाव व रूप संस्कार' से रहित परिग्रहण होने लगा। उस यथार्थ को बिना साज-सँवार के ज्यों का त्यों फोटोग्राफी के रूप में रख दिया गया। वस्तु-चयन के कुछ निदर्शन ये हैं :—

उपकरणों का विवेचन

"निकटतर धँसती हुई छत आड में निर्वेद
मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में—
तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव,
धैर्य धन गदहा!"

दूसरा आग्रह इन कवियो का नवीनता की अभिरुचि है। पूर्व आचार्यों ने भी सौंदर्य की परिभाषा लिखते हुए कहा था—"क्षणे क्षणे यन्नवता-मुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः।" पर इस नवीनता में कुछ अन्तर है—विषयो को प्रकृत अनुभूति से ग्रहण न कर नाना शास्त्रो के अध्ययन से उत्पन्न ग्रंथियो तथा अपवादो को लोगो के सामने रखना। इसमें जीव विज्ञान, भूत

लगा। पुष्प भार से गदल मधमास के समकक्ष 'कूड़े का ढेर' रखा गया। सुन्दर, सुरूप के समान ही महत्ता कुरूप, असुन्दर, सड़न की होने लगी। प्रयोगवादी कवि 'गटर-दुर्गन्धयुक्त' का दायित्व ग्रहण करने लगे—

"सरग था ऊपर नीचे पाताल था,
अरब के मारे बहुत बुरा हाल था।
दिल दिमाग भुस का गट्ठर का हाल था।"

इस नवीन धारा में 'फ्रायड, एडलर व जुंग' के चेतन, अवचेतन, अचेतन मन की ग्रंथियों के जटिल प्रतीकों को स्थान मिला। उलझी संवेदनाओं तथा संवेदना खंडों को यौन प्रतीकों के सहारे से उपस्थित करना, ये जीवन की उलझनें वास्तविक अनुभूति से दूर किसी मनोवैज्ञानिक की प्रयोगशाला में पड़े हुए रुग्ण मानस के 'दिमागी मरीज' को सामने लाती हैं। वे इस वस्तु-जगत् की समस्याओं का सर्व-संवेद्य समाधान उपस्थित न कर और कल्पित गुत्थियाँ सामने लाती हैं। इनमें अधिकतर काम-कुंठाएँ या दमित यौन कल्पनाएँ भरी पड़ी रहती हैं। यह भी काव्य की पुरानी शृंगारिक भावना ही है, पर अधिक नग्न रूप में तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (Psycho-Analysis) की आड़ में। बाह्य संघर्ष के मूल में रहने वाले अन्त संघर्ष को सामने लाना तो क्रान्तदर्शी कवि का कर्त्तव्य था, है, और रहेगा। पर इसकी अभिव्यक्ति प्रणाली में अन्तर आ रहा है। जैसे 'चूड़ी का टुकड़ा' शीर्षक कविता का निम्न अंश—

"एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा, गिरा रेशमी चूड़ी का छोटा सा टुकड़ा।

मनोवैज्ञानिक धारणाएँ (concepts) पर्याप्त नही । व्यक्ति-सत्य का सामाजिक-सत्य के रूप मे ग्रहण व प्रेषण होना चाहिए । 'प्रयोग' मानव की विशेष वृत्ति है, पर प्रयोग 'केवल प्रयोग' के लिये तो व्यर्थ है । वैज्ञानिक भी प्रयोगों को साधन के रूप मे ग्रहण करता है । इसी प्रकार शिल्प-विधान के क्षेत्र मे भी भाषा-छद विषयक प्रयोग होने चाहिए पर "प्रयोग बाहुल्य साहित्य सृजन नही कर सकता।" प्रयोग किसी जातीय जीवन की शाश्वत निधि नही है । सपूर्ण मानव जीवन को उन्नत, सुखी तथा सपन्न बनाने के लिए प्रयोग होने चाहिए—तथा उन सग्रहीत सत्यों व सिद्धान्तो की दृष्टि से नव सृजनात्मक चेतना का निर्माण होना चाहिए । अतः प्रयोगवादियों का यह पूर्वग्रह (prejudice) भी भ्रामक है कि "भाषा को अपर्याप्त मान कर उसे विराम-सकेतो, अको, सीधी-तिरछी लकीरो, छोटे-बडे टाइप, सीधे-उल्टे अक्षरो, लोगो व स्थानो के नाम व अधूरे वाक्यो की शरण लेनी पडती है।" भाषा की प्रौढ शक्ति व प्रवाह मानस स्वास्थ्य का परिचायक है। विकृत मानस तत्व सवेदना व धारणा विकृत प्रतीक खडो मे व पदावली मे बहेगी। *भाषा की सामाजिकता का निर्वाह करना प्रत्येक साहित्यिक का कर्त्तव्य है।* "काव्य को गतिरोध व रूढिजाल से मुक्त करने के लिए प्रयोग स्तुत्य है, पर प्रयोग के लिये प्रयोग ?"

अन्त मे हम कहना चाहते हैं कि वर्तमान की शिश्नोदरी सभ्यता ने जीवन को "आहार-निद्रा-भय-मैथुन" तक ही सीमित मान लिया है, अतः प्रयोगवाद भी इन्ही पशुवृत्तियों से मानव का मूल्याकन कर रहा है । पर, आशा है कि, शख-सीपी घोघे बटोरने मे कही अमूल्य मुक्ता भी मिल जाए।

—विष्णुराम नागर

(१)

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

कृष्ण-संदेश

(प्रिय प्रवास के सोलहवें सर्ग से)

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श्री 'हरिऔध' जी का जन्म संवत् १९२२ में निजामाबाद के एक सुसंस्कृत ब्राह्मण कुल में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा युग-रुचि के अनुरूप उर्दू-फारसी में हुई, संस्कृत उन्हें पैतृक-धरोहर के रूप में मिली। आर्थिक संकीर्णता व अस्वस्थता के कारण पठन-क्रम छोड़ अध्यापकी करनी पड़ी। फिर वे सदर कानूनगो बने तथा योग्यतापूर्वक कार्यावधि पूर्ण कर उन्होंने इसी पद से विश्राम ग्रहण किया। शेष जीवन 'भारती' की सेवा में समर्पित किया। संवत् १९८० में वे हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा अठारह वर्षों तक सेवा की। उनका देहावसान संवत् २००२ में हुआ।

उनके व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति संक्रान्त थी। इनके भक्ति-प्रवण भावुक हृदय में सर्वांगीण साहित्यिक प्रतिभा विद्यमान थी। इनकी रचनाएँ मौलिक-अनूदित, गद्य-पद्य, नूतन-पुरातन, संस्कृत-उर्दू पदावली की विविध प्रकार की हैं। नाना प्रकार के नूतन प्रयोग की प्रवृत्ति लक्षित होती है। नव्य काव्य विधान-शिल्प इनमें प्रभूत है। इनकी रचनाएँ ये हैं —

महाकाव्य—प्रियप्रवास, वैदेही वनवास।

उपन्यास—अधखिला फूल, ठेठ हिन्दी का ठाठ।

आलोचना व सिद्धान्त—कबीर वचनावली की आलोचना व हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास।

स्फुट कविताओं के अनेक ग्रंथ—चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल, रस कलश, पद्य प्रसून आदि प्रसिद्ध हैं।

अनूदित—वेनिस का बांका—रिपवान विंकल का उर्दू अनुवाद।

कृष्ण-संदेश

इसी तपोभूमि-समान वाटिका-
सु-अंक में सुन्दर एक कुंज थी।
समावृता श्यामल-पुष्प-संकुला।
अनेकशः वेलि-लता-समूह से॥

विराजती थी वृष-भानु-नन्दिनी।
इसी बड़े नीरव शान्त-कुंज में।
अतः यहीं श्रीबलवीर-बन्धु ने।
उन्हें विलोका अलि-वृन्द आवृता॥

प्रशान्त, म्लाना, वृषभानु-कन्यका-
सुमूर्ति देवी सम दिव्यतामयी।
विलोक, हो भावित भक्ति-भाव से।
विचित्र ऊधो-उर की दशा हुई॥

अतीव थी कोमल-कान्ति नेत्र की।
परन्तु थी शान्ति विषाद-अंकिता।
विचित्र-मुद्रा मुख-पद्म की मि[illegible]
प्रफुल्लता- [illegible]

स-प्रीति वे आदर के लिये उठीं।
विलोक आया व्रज-देव-बन्धु को।
पुनः उन्होंने निज-शान्त-कुंज में।
उन्हें बिठाया अति-भक्ति-भाव से॥

अतीव-सम्मान समेत आदि में।
व्रजेश्वरी की कुशलादि पूछ के।
पुनः सुधी-ऊधव ने स-नम्रता।
कहा सँदेसा यह श्याम-मूर्ति का॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

"प्राणाधारे परम-सरले प्रेम की मूर्ति राधे।
निर्माता ने पृथक् तुमसे यों किया क्यों मुझे है।
प्यारी आशा प्रिय-मिलन की नित्य है दूर होती।
कैसे ऐसे कठिन-पथ का पान्थ मैं हो रहा हूँ॥

जो दो प्यारे हृदय मिल के एक ही हो गये हैं।
क्यों धाता ने विलग उनके गात को यों किया है।
कैसे आ के गुरु-गिरि पड़े बीच में हैं उन्हीं के।
जो दो प्रेमी मिलित पय औ' नीर से नित्यशः थे॥

उत्कण्ठा के विवश नभ को, भूमि को, पादपों को।
ताराओं को, मनुज-मुख को प्रायशः देखता हूँ।
प्यारी! ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती।
जो चिन्ता से चलित-चित की शान्ति का हेतु होवे॥

जाना जाता मरम विधि के बंधनों का नहीं है।
तो भी होगा उचित चित में यों प्रिये मान लेना।
होते जाते विफल यदि हैं सर्व-संयोग सूत्र।
तो होवेगा निहित इसमें श्रेय का बीज कोई॥

हैं प्यारी औ' मधुर सुख औ' भोग की लालसायें।
कान्ते, लिप्सा जगत-हित की और भी है मनोज्ञा।
इच्छा आत्मा परम-हित की मुक्ति की उत्तमा है।
वांछा होती विशद उससे आत्म-उत्सर्ग की है॥

जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी।
जी से प्यारा जगत-हित औ' लोक-सेवा जिसे है।
प्यारी सच्चा अवनि-तल में आत्मत्यागी वही है॥

जो पृथ्वी के विपुल-सुख की माधुरी है विपाशा।
प्राणी-सेवा जनित सुख की प्राप्ति तो जह्नुजा है।
जो आद्या है नखत-द्युति सी व्याप जाती उरों में।
तो होती है लसित उसमें कौमुदी सी द्वितीया॥

भोगों में भी विविध कितनी रंजिनी शक्तियाँ हैं।
वे तो भी हैं जगत-हित से मुग्धकारी न होते।
सच्ची यों है कलुष उनमें है बड़े क्लान्ति-कारी।
पाई जाती ललित इसमें शान्ति लोकोत्तरा है॥

है आत्मा का न सुग किसको विश्व के मध्य प्यारा।
सारे प्राणी स-रुचि इसकी माधुरी मे बँधे है।
जो होता है न वश इसके आत्म-उत्सर्ग-द्वारा।
ऐ कान्ते है सफल अवनी-मध्य आना उसी का॥

जो है भावी परम-प्रबला दैव-इच्छा प्रधाना।
तो होवेगा उचित न, दुखी वांछितों हेतु होना।
श्रेयकारी सतत दयिते सात्विकी-कार्य्य होगा।
जो हो स्वार्थोपरत भव मे सर्व-भूतोपकारी॥"

वंशस्थ छन्द

अतीव हो अन्यमना विषादिता।
विमोचते वारि दृगारविन्द से।
समस्त सन्देश सुना ब्रजेश का।
ब्रजेश्वरी ने उर वज्र-सा बना॥

पुन. उन्होने अति शान्त-भाव से।
कभी बहा अश्रु कभी स-धीरता।
कही स्व-बातें बलवीर-बधु से।
दिखा कुलस्त्रोचित-चित्त-उच्चता॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

"मै हूँ ऊधो पुलकित हुई आपको आज पा के।
सन्देशो को श्रवण करके और भी मोदिता हूँ।
मन्दीभूता, उर-तिमिर की ध्वंसिनी ज्ञान आभा।
उद्दीप्ता हो उचित-गति से उज्ज्वला हो रही है॥

मेरे प्यारे, पुरुष, पृथ्वी-रत्न औ' शान्त धी हैं।
सन्देशों में तदपि उनकी, वेदना, व्यंजिता है।
मैं नारी हूँ, तरल-उर हूँ, प्यार से वंचिता हूँ।
जो होती हूँ विकल, विमना, व्यस्त, वैचित्र्य क्या है॥

हो जाती है रजनि मलिना ज्यों कला-नाथ डूबे।
वाटी शोभा रहित बनती ज्यों वसन्तान्त में है।
त्योंही प्यारे विधु-वदन की कान्ति से वंचिता हो।
श्री-हीना औ' मलिन व्रज की मेदिनी हो गई है॥

जैसे प्राय: लहर उठती वारि में वायु से है।
त्योंही होता चित चलित है कम्पितावेग-द्वारा।
उद्वेगों में व्यथित बनना बात स्वाभाविकी है।
हाँ, ज्ञानी औ' विबुध-जन में मुह्यता है न होती॥

पूरा-पूरा परम-प्रिय का मर्म्म मैं बूझती हूँ।
है जो वांछा विशद उर में जानती भी उसे हूँ।
यत्नों द्वारा प्रति-दिन अत: मैं महा संयता हूँ।
तो भी देती विरह-जनिता-वासनायें व्यथा हैं॥

जो मैं कोई विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ।
तो उत्कण्ठा-विवश चित में आज भी सोचती हूँ।
होते मेरे अबल तन में पक्ष जो पक्षियों-से।
तो यों ही मैं स-मुद उड़ती श्याम के पास जाती॥

जैसे पानी प्रणय तृषितों की तृषा है न होती ।
हो पाती है न क्षुधित-क्षुधा अन्न-आसक्ति जैसे ।
वैसे ही रूप निलय नरों मोहिनी-मूर्तियों में । २५५ ।
हो पाता है न 'प्रणय' हुआ मोह रूपादि-द्वारा ॥

भूली-भूला इस प्रणय की बुद्धि की वृत्तियाँ
हो जाती है समधिकृत जो व्यक्ति के सद्गुणों
वे होते हैं नित नव, तथा दिव्यता-धाम, स्थायी
पाई जाती प्रणय-पथ में स्थायिता है इसीमें

हो पाता है विकृत स्थिरता-हीन है। रूप होता ।
पाई जाती नहिं इसलिए मोह में स्थायिता है ।
होता है रूप विकसित भी प्रायशः एक ही सा ।
हो जाता है प्रशमित अत मोह संभोग से भी ॥ २५७

नाना स्वार्थों सरस-सुख की वासना-मध्य डूब
आवेगों से वलित ममतावान है मोह होता
निष्कामी है प्रणय-शुचिता-मूर्ति है सात्विकी
२५८ होती पूरी प्रमिति उसमें आत्म-उत्सर्ग की

मद्य होती फलित, चित में मोह की मत्तता है ।
धीरे-धीरे प्रणय बसता, व्यापता है उरों में ।
हो जाती है विवश अपरा-वृत्तियाँ मोह-द्वारा ।
भावोन्मेषी प्रणय करता चित्त सद्वृत्ति को है ॥

हो जाते हैं उदय कितने भाव ऐसे उरों में ।
होती है मोह-वश जिनमें प्रेम की भ्रान्ति प्राय ।
वे होते हैं न प्रणय न वे हैं समीचीन होते ।
पाई जाती अधिक उनमें मोह की वासना है ॥

होके उत्कण्ठ प्रिय-मुख की भूयसी-लालसा से ।
जो है प्राणी हृदय-तल की वृत्ति उत्सर्ग-शीला ।
पुण्याकाक्षा सुयश-रुचि वा धर्म-लिप्सा बिना ही ।
ज्ञानाओं ने प्रणय अभिधा दान की है उसीको ॥

आदौ होता गुण ग्रहण है उक्त सद्वृत्ति-द्वारा ।
हो जाती है उदित उर में फेर आसंग-लिप्सा ।
होती उत्पन्न सहृदयता बाद संसर्ग के है ।
पीछे स्फो आत्म-सुधि लसती आत्म-उत्सर्गता है ॥

सद्गंधों से, मधुर-स्वर से, स्पर्श से औ' रसो से ।
जो है प्राणी हृदय-तल में मोह उद्भूत होते ।
वे ग्राही है जन-हृदय के रूप में मोह ही से ।
हो पाते है तदपि उतने मत्तकारी नही वे ॥

व्यापी भी है अधिक उनसे रूप का मोह होता ।
पाया जाता प्रबल उनका चित्त-चाञ्चल्य भी है ।
मानी जाती न क्षिति तल-में है पतंगोपमाना ।
भृङ्गो, मीनो, द्विरद मृग की मत्तता प्रीतिमत्ता ॥

मोहों में है प्रबल सबसे रूप का मोह होना ।
कैसे होवे अपर, वह जो प्रेम है हो न पाता ।
जो है प्यारा प्रणय-मणि सा काँच सा मोह तो है ।
ऊँची न्यारी रुचिर महिमा मोह से प्रेम की है ॥

दोनों आँखें निरख जिसको तृप्त होती नहीं हैं ।
ज्यों-ज्यों देखे अधिक जिसकी दीखती मंजुता है ।
जो है लीला-निलय महि में वस्तु स्वर्गीय जो है ।
ऐसा राका-उदित-विधु सा रूप उल्लासकारी ॥

उत्कण्ठा से वह सुन जिसे मत्त सा बार लाखों ।
कानों की है न तिल भर भी दूर होती पिपासा ।
हृत्तन्त्री में ध्वनित करता स्वर्ग-संगीत जो है ।
ऐसा प्यारा-स्वर उर-जयी विश्व-व्यामोहकारी ॥

होता है मूल अग जग के सद्रूपों-स्वरों का ।
या होती है मिलित उसमें मुग्धता सद्गुणों की ।
ए बातें ही विहित-विधि के साथ हैं व्यक्त होती ।
प्यारे गंधों सरस-रस औ स्पर्श-वैचित्र्य में भी ॥

पूरी-पूरी कुँवर-वर के रूप में है महत्ता ।
मन्त्रों में हो मुखर, मुरली दिव्यता से भरी है ।
सारे न्यारे प्रमुख-गुण की सात्त्विकी मूर्ति वे हैं ।
कैसे प्यारी प्रणय उनका अन्तरों में न होगा ॥

जो आगवना ब्रज-अवनि मे बालिकाये कई है ।
वे गारी ही प्रणय रंग मे श्याम के रञ्जिता है ।
मै मानूंगी अधिक उनमे है महा-मोह-मग्ना ।
तो भी प्राय प्रणय-पथ की पथिनी ही सभी है ॥

मेरी भी है कुछ गति यही श्याम को भूल दूं क्यो ।
काढूं कैसे हृदय-तल मे श्यामली-मूर्त्ति न्यारी ।
जीते जी जो न मन सकता भूल है मजु-ताने ।
तो क्यो होगी शमित प्रिय के लाभ की लालमाये ।।शान्त

ए आंखे है जिधर फिरती चाहती श्याम को है ।
कानो को भी मधुर-रव की आज भी लौ लगी है ।
कोई मेरे हृदय-तल को पैठ के जो विलोके ।
तो पावेगा लसित उसमे कान्ति प्यारी उन्ही की ॥

जो होता है उदित नभ मे कौमुदी कात आ के ।
या जो कोई कुसुम विकसा देख पाती कही हूँ ।
शोभा-वाले हरित दल के पादपो को विलोके ।
है प्यारे का विकच-मुखडा आज भी याद आता ॥

कालिन्दी के पुलिन पर जा, या, सजीले-सरों में ।
जो मैं फूले-कमल-कुल को मुग्ध हो देखती हूँ ।
तो प्यारे के कलित-कर की औ' अनूठे पगो की ।
छा जाती है सरस-सुषमा वारि-स्रावी दृगों में ॥

तारों में मैं खचित-नभ को देखती जो कभी हूँ ।
या मेघों में मुदित-बक की पंक्तियाँ दीखती हैं ।
तो जाती हूँ उमग, बँधता ध्यान ऐसा मुझे है ।
मानो मुक्ता-लसित-उर है श्याम का दृष्टि आता ॥

छू देती है मृदु-पवन जो पास आ गात मेरा ।
तो हो जाती परम-सुधि है श्याम-प्यारे-करों की ।
ले पुष्पों की सुरभि वह जो कुंज में डोलती है ।
तो गंधों से वलित मुख की वास है याद आती ॥

ऊँचे-ऊँचे शिखर चित की उच्चता हैं दिखाते ।
ला देता है परम दृढ़ता मेरु आगे दृगों के ।
नाना-क्रीड़ा-निलय-झरना चारु-छीटें उड़ाता ।
उल्लासों को कुँवर-वर के चक्षु में है लसाता ॥

कालिन्दी एक प्रियतम के गात की श्यामता ही ।
मेरे प्यासे दृग-युगल के सामने है न लाती ।
प्यारी लीला सकल अपने कूल की मंजुता से ।
सद्भावों के सहित चित में सर्वदा है लसाती ।

फूली संध्या परम-प्रिय की कान्ति सी है दिखाती ।
मैं पाती हूँ रजनि-तन में श्याम का रंग छाया ।
ऊषा आती प्रति-दिवस है प्रीति से रंजिता हो ।
पाया जाता वर-वदन सा ओप आदित्य में है ॥

मैं पाती हूँ अलक-सुषमा भृंग की मालिका में ।
है आँखों की सु-छवि मिलती खंजनों औ' मृगों में ।
दोनों बाँहें कलभ-कर को देख हैं याद आती ।
पाई शोभा रुचिर शुक के ठोर में नासिका की ॥

हैं दाँतों की झलक मुझको दीखती दाड़िमों में ।
बिम्बाओं में वर अधर-सी राजती लालिमा है ।
मैं केलों में जघन-युग की मंजुता देखती हूँ ।
गुल्फों की सी ललित सुषमा है गुलों में दिखाती ॥

नेत्रोन्मादी बहु-मुदमयी-नीलिमा गात की सी ।
न्यारे नीले गगन-तल के अंक में राजती है ।
भू में शोभा, सुरस जल में, वह्नि में दिव्य-आभा ।
मेरे प्यारे कुँवर-वर सी प्रायशः है दिखाती ॥

सायं-प्रातः सरस-स्वर से कूजते हैं पखेरू ।
प्यारी-प्यारी मधुर-ध्वनियाँ मत्त हो, हैं सुनाते ।
मैं पाती हूँ मधुर ध्वनि में कूजने में खगों के ।
मीठी-तानें परम-प्रिय की मोहिनी-वंशिका की ॥

मेरी बातें श्रवण करके आप उद्विग्न होंगे ।
जानेंगे मैं विवश बन के हूँ महा-मोह-मग्ना ।
सच्ची यों है न निज-सुख के हेतु मैं मोहिता हूँ ।
संरक्षा में प्रणय-पथ के भावतः हूँ सयत्ना ॥

हो जाती है विधि-सृजन से इक्षु में माधुरी जो ।
आ जाता है सरस रँग जो पुष्प की पंखड़ी में ।
क्यों होगा सो रहित रहते इक्षुता-पुष्पता के ।
ऐसे ही क्यों प्रसृत उर में जीवनाधार होगा ॥

क्यों मोहेंगे न दृग लख के मूर्तियाँ रूपवाली ।
कानों को भी मधुर-स्वर से मुग्धता क्यों न होगी ।
क्यों डूबेंगे न उर रस में प्रीति-आरंजितों के ।
धाता-द्वारा सृजित तन में तो इसी हेतु वे हैं ॥

छाया-ग्राही मुकुर यदि हो वारि तो चित्र क्या है ?
जो वे छाया ग्रहण न करें चित्रता तो यही है ।
वैसे ही नेत्र, श्रुति, उर में जो न रूपादि व्यापें ।
तो विज्ञानी, विबुध उनको स्वस्थ कैसे कहेंगे ॥

पाई जाती श्रवण करने आदि में भिन्नता है ।
देखा जाता प्रभृति भव में भूरि-भेदों भरा है ।
कोई होता कलुष-युत है वासना-लिप्त हो के ।
त्योंही कोई परम-सुचितावान औ संयमी है ॥

पक्षी होता सु-पुलकित है देख सत्पुष्प फूला ।
भौंरा शोभा निरख रस ले मत्त हो गूँजता है ।
अर्थी-माली मुदित बन भी है उसे तोड़ लेता ।
तीनों का ही कल-कुसुम का देखना यों त्रिधा है ॥

लोकोल्लासी छवि लख किसी रूप उद्भासिता की।
कोई होता मदन-वश है मोद में मग्न कोई।
कोई गाता परम-प्रभु की कीर्ति है मुग्ध-सा हो।
यों तीनो की प्रचुर-प्रखरा दृष्टि है भिन्न होती ॥

शोभा-वाले विटप विलसे पक्षियों के स्वरो से ।
विज्ञानी है परम-प्रभु के प्रेम का पाठ पाता।
व्याधा की है हनन-रुचियाँ और भी तीव्र होती।
यो दोनो के श्रवण करने मे बड़ी भिन्नता है॥

यो ही है भेद युत चखना, सूंघना और छूना।
पात्रो मे है प्रकट इनकी भिन्नता नित्य होती।
ऐसी ही है हृदय-तल के भाव मे भिन्नतायें ।
भावों ही से अवनि-तल है स्वर्ग के तुल्य होता ॥

प्यारे आवें मृ-वयन कहें प्यार से गोद लेवें।
ठंडे होवे नयन, दुख हों दूर, मैं मोद पाऊँ ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें ॥

जो होता है हृदय-तल का भाव लोकोपतापी ।
छिद्रान्वेषी, मलिन, वह है तामसी-वृत्ति-वाला।
नाना भोगाकलित, विविधा-वासना-मध्य डूबा।
जो है स्वार्थाभिमुख वह है राजसी-वृत्ति-वाली॥

निष्कामी है भव-सुखद है और है विश्व-प्रेमी।
जो है भोगोपगत वह है सात्विकी-वृत्ति-शोभी।
ऐसी ही है श्रवण करने आदि की भी व्यवस्था।
आत्मोत्सर्गी, हृदय-तल की सात्विकी-वृत्ति ही है॥

जिह्वा, नासा, श्रवण अथवा नेत्र होते शरीरी।
क्यों त्यागेंगे प्रकृति, अपने कार्य्य को क्यों तजेंगे।
क्यों होवेगी शमित उर की लालसायें, अतः मैं।
रंगे देती प्रति-दिन उन्हें सात्विकी-वृत्ति में हूँ॥

कंजों का या उदित-विधु का देख सौंदर्य आँखों।
या कानों से श्रवण करके गान मीठा खगों का।
मैं होती थी व्यथित, अब हूँ शान्ति सानन्द पाती।
प्यारे के पाँव, मुख, मुरली-नाद जैसा उन्हें पा॥

यों ही जो है अवनि नभ में दिव्य, प्यारा, उन्हें मैं।
जो छूती हूँ श्रवण करती देखती सूँघती हूँ।
तो होती हूँ मुदित उनमें भावते श्याम की पा।
न्यारी-शोभा, सुगुण-गरिमा अंग सम्भूत साम्या॥

हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला।
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम-प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही में॥

ताराओं में तिमिर-हर में वह्नि-विद्युल्लता में ।
नाना रत्नों, विविध मणियों में विभा है उसी की ।
पृथ्वी, पानी, पवन, नभ में, पादपों में, खगों में ।
मैं पाती हूँ प्रथित-प्रभुता विश्व में व्याप्त की ही ॥

प्यारी-सत्ता जगत-गत की नित्य लीला-मयी है ।
स्नेहोपेता परम-मधुरा पूतता में पगी है ।
ऊँची-न्यारी-सरल-सरसा ज्ञान-गर्भा मनोज्ञा ।
पूज्या मान्या हृदय-तल की रंजिता उज्ज्वला है ॥

मैंने की है कथन जितनी शास्त्र-विज्ञात बातें ।
वे बातें हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व-रूपी ।
व्यापी है विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राणप्यारा ।
यों ही मैंने जगत-पति को श्याम में है विलोका ॥

शास्त्रों में है लिखित प्रभु की भक्ति निष्काम जो है ।
सो दिव्या है मनुज-तन की सर्व संसिद्धियों में ।
मैं होती हूँ सुखित यह जो तत्त्वतः देखती हूँ ।
प्यारे की औ' परम-प्रभु की भक्तियाँ हैं अभिन्ना ॥

द्रुतविलम्बित छन्द

जगत-जीवन प्राण स्वरूप का ।
निज पिता जननी गुरु आदि का ।
स्व-प्रिय का प्रिय साधन भक्ति है ।
वह अकाम महा-कमनीय है ॥

श्रवण, कीर्त्तन, वन्दन, दासता।
स्मरण, आत्म-निवेदन, अर्चना।
सहित सख्य तथा पद-सेवना।
निगदिता नवधा प्रभु-भक्ति है॥

वंशस्थ छंद

बना किसी की यक मूर्ति कल्पिता।
करे उसी की पद-सेवनादि जो।
न तुल्य होगा वह बुद्धि दृष्टि से।
स्वयं उसीकी पद-अर्चनादि के॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो है उसी के।
सारे प्राणी सरि गिरि लता वेलियाँ वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावोपेता परम-प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है॥

जी से सारा कथन सुनना आर्त्त-उत्पीड़ितों का।
रोगी प्राणी व्यथित जन का लोक-उन्नायकों का।
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का।
मानी जाती श्रवण-अभिधा-भक्ति है सज्जनों में॥

सोये जागें, तम-पतित की दृष्टि में ज्योति आवे।
भूले आवें सु-पथ पर औ' ज्ञान-उन्मेष होवे।
ऐसा गाना कथन करना दिव्य-न्यारे गुणों का।
है प्यारी भक्ति प्रभुवर की कीर्त्तनोपाधिवाली॥

विद्वानों के स्व-गुरु-जन के देश के प्रेमिकों के।
ज्ञानी दानी सु-चरित गुणी सर्व-तेजस्वियों के।
आत्मोत्सर्गी विबुध जन के देव सद्विग्रहों के।
आगे होना नमित प्रभु को भक्ति है वन्दनाख्या॥

जो बातें हैं भव-हितकरी सर्व-भूतोपकारी।
जो चेष्टायें मलिन गिरती जातियाँ हैं उठाती।
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना।
विश्वात्मा-भक्ति भव-सुखदा दासता-संज्ञका है॥

कंगालों की विवश विधवा औ' अनाथाश्रितों की।
उद्विग्नों की सुरति करना औ' उन्हें त्राण देना।
सत्कार्यों का पर-हृदय की पीर का ध्यान आना।
मानी जाती स्मरण-अभिधा भक्ति है भावुकों में॥

द्रुतविलम्बित छन्द

विपद-सिन्धु पड़े नर-वृन्द के।
दुख-निवारण औ' हित के लिये।
अरपना अपने मन प्राण को।
प्रथित आत्म-निवेदन-भक्ति है॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

संतप्तों को शरण मधुरा-शान्ति संतापितों को।
निर्बोधों को सु-मति विविधा औषधी पीड़ितों को।
पानी देना तृषित-जन को अन्न भूखे नरों को।
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना-संज्ञका है॥

नाना प्राणी तरु गिरि लता आदि की बात ही क्या।
जो दूर्वा से द्यु-मणि तक है व्योम मे या धरा में।
सद्भावों के सहित उनसे कार्य्य-प्रत्येक लेना।
सच्चा होना सुहृद उनका, भक्ति है सख्य-नाम्नी॥

वसंततिलका छन्द

जो प्राणि-पुंज निज कर्म्म-निपीडनों से।
नीचे समाज-वपु के पग सा पड़ा है।
देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा।
है भक्ति लोक-पति की पद-सेवनाख्या॥

द्रुतविलम्बित छन्द

कह चुकी प्रिय-साधन ईश का।
कुँवर का प्रिय-साधन है यही।
इसलिये प्रिय की परमेश की।
परम-पावन-भक्ति अभिन्न है॥

यह हुआ मणि-कांचन-योग है।
मिलन है यह स्वर्ण-सुगन्ध का।
यह सुयोग मिले बहु-पुण्य से।
अवनि में अति-भाग्यवती हुई॥

मन्दाक्रान्ता छन्द

जो इच्छा है परम-प्रिय की जो अनुज्ञा हुई है।
मै प्राणों के अछत उसको भूल कैसे सकूँगी।
यों भी मेरे परम व्रत के तुल्य बाते यही थी।
हो जाऊँगी अधिक अब मैं दत्तचित्ता इन्ही में॥

मैं मानूँगी अधिक मुझमें मोह-माया अभी है।
होती हूँ मैं प्रणय-रंग से रंजिता नित्य तो भी।
ऐसी हूँगी निरत अब मैं पूत-कार्य्यावली में।
मेरे जी में प्रणय जिससे पूर्णतः व्याप्त होवे॥

मैंने प्रायः निकट प्रिय के बैठ, है भक्ति सीखी।
जिज्ञासा से विविध उनका मर्म्म है जान पाया।
चेष्टा ऐसी सतत अपनी बुद्धि-द्वारा करूँगी।
भूलूँ-चूकूँ न इस व्रत की पूत-कार्य्यावली में॥

जा के मेरी विनय इतनी नम्रता से सुनावें।
मेरे प्यारे कुँवर-वर को आप सौजन्य-द्वारा।
मैं ऐसी हूँ न निज-दुख से कष्टिता शोक-मग्ना।
हा! जैसी हूँ व्यथित व्रज के वासियों के दुखों से॥

गोपी गोपों विकल व्रज की बालिका बालकों को।
आ के पुष्पानुपम मुखड़ा प्राणप्यारे दिखावें।
बाधा कोई न यदि प्रिय के चारु-कर्त्तव्य में हो।
तो वे आ के जनक-जननी की दशा देख जावें॥

मैं मानूँगी अधिक बढ़ता लोभ है लाभ ही से।
तो भी होगा सु-फल, कितनी भ्रान्तियाँ दूर होंगी।
जो उत्कंठा-जनित दुखड़े दाहते हैं उरों को।
सद्वाक्यों से प्रबल उनका वेग भी शान्त होगा॥

सत्कर्मी हैं, परम-शुचि हैं, आप ऊधो, सुधी हैं।
अच्छा होगा सनय प्रभु से आप चाहें यही जो।
आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की, विश्व के काम आऊँ।
मेरा कौमार-व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।।"

द्रुतविलम्बित छन्द

चुप हुई इतना कह मुग्ध हो।
व्रज-विभूति-विभूषण राधिका।
चरण की रज ले हरिबन्धु भी।
परम-शान्ति समेत विदा हुए।।

(२)

श्री मैथिलीशरण गुप्त

उर्मिला की तपःसाधना

(साकेत के नवम सर्ग से)

मैथिलीशरण गुप्त

ऊर्मिला की तपःसाधना

दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक-लीला
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला
त्यागी भी हैं शरण जिनके जो अनासक्त गेही,
राजा-योगी जय जनक वे पुण्यदेही विदेही।

विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा
सरस दो पद भी न हुए हहा !
कठिन है कविते तव भूमि ही
पर यहाँ श्रम भी सुख-सा रहा !

स्वामि-सहित सीता ने
नन्दन माना सघन-गहन कानन भी,
वन उर्मिला वधू ने
किया उन्हीके हितार्थ निज उपवन भी !

अपने अतुलित कुल में
प्रकट हुआ था कलक जो काला,
वह उस कुल-बाला ने
अश्रु-सलिल से समस्त धो डाला।

भूल अवधि-सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी–'आओ !'
किन्तु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर---'जाओ !'

मानस-मन्दिर मे सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह मे, बनी आरती आप !
आँखो मे प्रिय-मूर्त्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम-वियोग!

आठ पहर चौसट घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वय उससे आत्मज्ञान !

उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन-रस के लेप मे,
और पाकर ताप उसके प्रिय-विरह-विक्षेप मे,

वर्ण-वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?

पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,
छींटे वही उड़े थे, बड़े-बड़े अश्रु वे कब थे ?

उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट,
धन्य सखी देवी रही निज यत्नों की ओट।

मिलाप था दूर अभी धनी का
विलाप ही था बस का बनी का।
अपूर्व आलाप वही हमारा,
यथा विपंची-दिर दार दारा !

सींचे ही बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्त्तरी,
शाखी फूलें फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएँ हरी।
क्रीड़ा-कानन-शैल यन्त्र-जल से ससिक्त होता रहे।
मेरे जीवन का, चलो सखि, वही सोता भिगोता बहे।

क्या क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ ?
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पाँचवीं तू प्रवीणा !

हुआ एक दुःस्वप्न-सा सखि, कैसा उत्पात,
जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात !

खान-पान तो ठीक है, पर तदनन्तर हाय !
आवश्यक विश्राम जो उसका कौन उपाय ?

अरी व्यर्थ है व्यजनो की बड़ाई,
हटा थाल, तू क्यो इसे आप लाई ?
वही पाक है, जो विना भूख भावे,
बना किन्तु तू ही, उसे कौन खावे ?

बनाती रसोई, सभी को खिलाती,
इसी काम मे आज मै तृप्ति पाती ।
रहा किन्तु मेरे लिये एक रोना,
खिलाऊँ किसे मै अलोना-सलोना ?

वन की भेट मिली है,
एक नई वह जडी मुझे जीजी से,
खाने पर सखि, जिसके
गुड गोबर-सा लगे स्वय ही जी से !

रस है बहुत, परन्तु सखि, विष है विषम प्रयोग,
विना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग !

लाई है क्षीर क्यो तू ? हठ मत कर यो,
मै पियूँगी न आली
मै हूँ क्या हाय ! कोई शिशु सफलहठी,
रक भी राज्यशाली ?

माना तू ने मुझे है तरुण विरहिणी,
वीर के साथ व्याहा,
आँखों का नीर ही क्या कम फिर मुझको ?
चाहिए और क्या हा !

चाहे फटा फटा हो, मेरा अम्बर अशून्य है आली,
आकर किसी अनिल ने भला यहाँ धूलि तो डाली !

धूलि-धूसर हैं तो क्या, यों तो मृन्मात्र गात्र भी,
वस्त्र ये वल्कलों में तो हैं सुरम्य, सुपात्र भी !

फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार में,
किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार में ?

पिऊँ ला, खाऊँ ला, सखि, पहन लूँ ला सब करूँ,
जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ ।

कहे जो, मानूँ सो, किस विध बता, धीरज धरूँ ?
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ ।

प्रोषितपतिकाएँ हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमन्त्रण दे आ,
समदुखिनी मिलें तो
दुख बँटें, जा, प्रणयपुरस्सर ले आ ।

सुख दे सकते हैं तो दुखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेटूँ,
कोई नहीं यहाँ क्या जिसका कोई अभाव मैं भी मेटूँ ?

इतनी बड़ी पुरी में, क्या ऐसी दुखिनी नहीं कोई ?
जिसकी सखी बनूँ मैं, जो मुझ-सी हो हँसी-रोई ?

खिंच कर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा !
(व्योम-सिन्धु सखि, देख, तारक-बुद्बुद दे रहा !)
बला अरी, अब क्या करूँ, रूठी रात से रार,
भय खाऊँ, आँसू पियूँ, मन मारूँ झखमार !

क्या क्षण क्षण में चौंक रही मैं ?
सुनती तुझसे आज यही मैं ।
तो सखि, क्या जीवन न जनाऊँ ?
इस क्षणदा को विफल बनाऊँ ?

अरी, सुरभि, जा, लौट जा, अपने अंग सहेज,
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज !

यथार्थ था सो सपना हुआ है,
अलीक था जो, अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी,
सुना वही एक नई-पुरानी ।

आओ, हो, आओ तुम्हीं, प्रिय के स्वप्न विराट,
अर्घ्य लिए आँखें खड़ी हेर रही हैं बाट ।

हाय ! न आया स्वप्न भी, और गई यह रात,
सखि, उडुगण भी उड चले, अब क्या गिनूं प्रभात ?

चंचल भी किरणों का
चरित्र क्या ही पवित्र है भोला,
देकर माख उन्होंने
उठा लिया लाल लाल वह गोला।

सखि, नीलनभस्सर में उतरा
यह हंस अहा ! तरता तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता चरता,
अपने हिम-विन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गड जायें न कण्टक भूतल के,
कर डाल रहा डरता डरता !

भीगी या रज में सनी अलिनी की यह पाँख ?
आलि, खुली किवा लगी नलिनी की वह आँख ?
खो खो कर कुछ काटते, सो सो कर कुछ काल,
रो रो कर ही हम मरे, गो गो कर स्वर-ताल !

* * *

ओहो ! मरा यह वराक वसन्त कैसा ?
ऊँचा गला रुँध गया अब अन्त जैसा।

देखो, बढा ज्वर, जरा-जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है !

तपोयोगि, आओ तुम्हीं, सब खेतों के सार,
कूड़ा-कर्कट हो जहाँ, करो जला कर छार ।
आया अपने द्वार तप, तू दे रही किवाड़,
सखि, क्या मैं बैठूं विमुख ले उशीर की आड़ ?

मुझे न अकेली अन्ध-अवनि-गर्भ-गेह में आली,
आज कहाँ है उसमे हिमांशु-मुख की अपूर्व उजियाली ?

आकाश-जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुवाय है आज बना,
करता है पद-प्रहार वही,
मक्खी-सी भिन्ना रही मही !

लपट से झट रूख जले, जले,
नद-नदी घट सूख चले, चले ।
विकल वे मृग-मीन मरे, मरे,
विफल ये दृग दीन भरे, भरे !

या तो पेड़ उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायगा,
बिना धूल उड़ाये हा ! उष्मानिल न जायगा !

मेरी चिन्ता छोड़ो,
मग्न रहो नाथ, आत्मचिन्तन में,

बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस नृप-निकेतन में

नयन-नीर पर ही सखी, तू करती थी खेद,
टपक उठा है देख अब, रोम रोम से स्वेद।
ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग!

प्रियतम के गौरव ने
लघुता दी है मुझे, रहे दिन भारी।
सखि, इस कटुता में भी
मधुस्मृति की मिठास, मैं बलिहारी!

तप, तुझसे परिपक्वता पाकर भले प्रकार,
बने हमारे फल सकल, प्रिय के ही उपहार।

पड़ी है लम्बी-सी अवधि पथ में, व्यग्र मन है।
गला रूखा मेरा, निकट तुझसे आज घन है!
मुझे भी दे दे तू स्वर तनिक सारंग, अपना,
कहूँ तो मैं भी हा! स्वरित प्रिय का नाम जपना।

चातकि, मुझको आज ही हुआ भाव का भान।
हा! वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान!
घूम उठे हैं शून्य में उमड़-घुमड़ घन घोर,
ये किसके उच्छ्वास से छाये हैं सब ओर?

तम में तू भी कम नहीं, जी, जुगनू, बडभाग,
भवन भवन में दीप हैं, जा, वन वन में जाग ।

हा ! वह सुहृदयता भी क्रीडा में है कठोरता जडिता,
तडप तडप उठती है स्वजनि, घनालिंगिता तडिता !

गाढ तिमिर की बाढ में डूब रही सब सृष्टि,
मानो चक्कर में पडी चकराती है दृष्टि ।

पथ तक जकडे हैं झाडियाँ डाल घेरा,
उपवन वन-सा हा ! हो गया आज मेरा ।
प्रियतम वनचारी गेह में भी रहेंगे,
कह सखि, मुझसे वे लौट के क्या कहेंगे ?

करे परिष्कृत मालिने आली, यह उद्यान,
करते होंगे गहन में प्रियतम इसका ध्यान ।

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड छाये !

करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बन्धूक सुहाये !
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो, ये अश्रु अर्घ्य भर लाये !

अपने प्रेम-हिमाश्रु ही दिये दूब ने भेंट,
उन्हें बनाकर रत्न-कण रवि ने लिया समेट।
प्रिय को था मैंने दिया पद्म-हार उपहार,
बोले—'आभारी हुआ पाकर यह पद-भार!'

अम्बु, अवनि, अम्बर में स्वच्छ शरद की पुनीत क्रीड़ा-सी,
पर सखि, अपने पीछे पड़ी अवधि पित्त-पीड़ा-सी!

हुआ विदीर्ण जहाँ तहाँ श्वेत आवरण जीर्ण,
व्योम शीर्ण कचुक धरे विषधर-सा विस्तीर्ण!

हा! मेरे कुजों का कूजन रोकर, निराश होकर सोया,
यह चन्द्रोदय उसको उढा रहा है धवल वसन-सा धोया।
सखि, मेरी धरती के करुणांकुर ही वियोग सेता है,
यह ओषधीश उनको स्वकरो से अस्थिसार देता है!

जन प्राचीजननी ने शशिशिशु को जो दिया डिठौना है,
उसको कलक कहना, यह भी मानों कठोर टौना है।

सजनी, मेरा मत यही, मजुल मुकुर मयंक,
हमे दीखता है वहाँ अपना राज्य-कलंक!

किसने मेरी स्मृति को
बना दिया है निशीथ में मतवाला?
नीलम के प्याले में
बुद्बुद् देकर उफन रही वह हाला!

नैश गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय!
तो क्या मैं निःश्वास भी न लूँ आज निरुपाय?
तारक-चिन्हदुकूलिनी पी-पी कर मधु मात्र,
उलट गई श्यामा यहाँ रिक्त सुधाधर-पात्र।

आलि, काल है काल अन्त में
उष्ण रहे चाहे वह शीत
आया यह हेमन्त दया कर
देख हमें सन्ताप-सभीत।

आगत का स्वागत समुचित है, पर क्या आँसू लेकर?
प्रिय होते तो लेती उनको मैं घी-गुड़ दे-देकर।

पाक और पकवान रहे, पर
गया स्वाद का अवसर बीत
आया यह हेमन्त दया कर
देख हमें सन्ताप-सभीत।

हे ऋतुवर्य क्षमा कर मुझको देख दैन्य यह मेरा
करता रह प्रतिवर्ष यहाँ तू फिर फिर आना फेरा।

ब्याज-सहित ऋण भर दूँगी मैं

सी-सी करती हुई पार्श्व में पाकर जब-जब मुझको,
आता उतराती पहने मे मेरे प्रियतम तुमको।

सबल ही सबल है अब तो,
हे आगत ही आज पुनीत,
आया यह हेमन्त दया कर,
देख हमें सन्ताप-सभीत ।

शालिशालि की सुरभि उड़ा कर मानो मंगल तारे,
हँसे हिमकणों में खिल खिल कर अनल-कुसुम अगारे।

आज धुकधुकी में मेरी भी
गंगा ही उद्दीप्त अतीत!
आया यह हेमन्त दया कर,
देख हमें सन्ताप-सभीत ।

पूछी थी सुकाल-दशा मैंने आज देवर से—
कैसी हुई उपज कपास, ईख, धान की ?
बोले—"इस बार देवि, देखने में भूमि पर
दुगनी दया-सी हुई इन्द्र भगवान की।"
पूछा यही मैंने एक ग्राम में तो कर्षकों ने
अन्न, गुड़, गोरस की वृद्धि ही बखान की,
किन्तु "स्वाद कैसा है, न जाने, इस वर्ष हाय!"
यह कह रोई एक अबला किसान की !

करती है तू शिशिर का बार बार उल्लेख,
पर सखि, मैं जल-सी रही, धुवाँधार यह देख!

सचमुच यह नीहार तो अब तू तनिक निहार,
अन्धकार भी शीत से श्वेत हुआ इस बार!

कभी गमकता था जहाँ कस्तूरी का गन्ध,
चौंक चमकता है वहाँ आज मनोमृग अन्ध!

शिशिर, न फिर गिरि-वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में?
वीर, जमा दे नयन-नीर यदि तू मानस-भाजन में,
तो मोती-सा मैं अकिंचना रक्खूँ उसको मन में।
हँसी गई, रो भी न सकूँ मैं,—अपने इस जीवन में,
तो उत्कण्ठा है, देखूँ फिर क्या हो भाव-भुवन में!

सखि, न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानुभूतिवशा,
जालगता मैं भी तो, हम दोनों की यहाँ समान-दशा।

न तो अगति ही है न गति, आज किसी भी ओर,
इस जीवन के झाड़ में रही एक झकझोर!

पाऊँ मैं तुम्हें आज, तुम मुझको पाओ,
लूँ मैं अंचल पसार, पीतपत्र, आओ।

फल और फल-निमित्त,
बलि देकर स्वर्ग-वित्त,
लेकर निश्चिन्त चित्त,
उड़ न हाय ! जाओ,
लू में अचल पमार, पीतपत्र, आओ।

तुम हो नीरस शरीर,
मुझ में है नयन-नीर,
इसका उपयोग वीर,
मुझको बतलाओ,
लू में अचल पमार, पीतपत्र, आओ।

जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की,
मधूक, चिन्ता न करो दलों की।
हो लाभ पूरा पर हानि थोड़ी,
हुआ करे तो वह भी निगोडी।

श्लाघनीय है एक-से दोनों ही द्युतिमन्त,
जो वसन्त का आदि है, वही शिशिर का अन्त।

ज्वलित जीवन धूम कि धूप है,
भुवन तो मन के अनुरूप है।
हसित कुन्द रहे कवि का कहा,
सखि, मुझे वह दाँत दिखा रहा!

हाय ! अर्थ की उष्णता देगी किसे न ताप ?
धनद-दिशा में तप उठे आतप-पति भी आप।

अपना सुमन लता ने
निकाल कर रख दिया, बिना बोले
आलि कहाँ वनमाली,
झड़ने के पूर्व झाँक ही जो ले ?

जा, मलयानिल, लौट जा, यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप !
भ्रमर, इधर मत भटकना, ये खट्टे अंगूर,
लेना चम्पक-गन्ध तुम, किन्तु दूर ही दूर।

सूखा है यह मुख यहाँ, रूखा है मन आज,
किन्तु सुमन-संकुल रहे प्रिय का बकुल समाज।

करूँ बड़ाई फूल की या फल की चिरकाल ?
फूला-फला यथार्थ में तू ही यहाँ रसाल !

अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने, शोक भस्म खो दिया, रो दिया !

नयनों को रोने दे,
मन, तू संकीर्ण न बन, प्रिय बैठे हैं
आँखों में ओझल हो,
गये नहीं वे कहीं, यहीं पैठे हैं।

यही आता है इस मन मे,
छोड धाम-धन जाकर मै भी रहूँ उसी वन में।
प्रिय के व्रत मे विघ्न न डालू, रहूँ निकट भी दूर,
व्यथा रहे, पर साथ-साथ ही ममाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन मे,
यही आता है इस मन मे।

बीच-बीच मे उन्हे देख लू मै झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जायं तब लेटू उसी धूल मे लोट।
रहे रत वे निज साधन मे,
यही आता है इस मन मे।

जाती-जाती, गाती-गाती, कह जाऊ यह बात—
धन के पीछे जन, जगती मे उचित नही उत्पात।
प्रेम की ही जय जीवन मे,
यही आता है इस मन में।

कूडे मे भी आगे
पहुँचा अपना अदृष्ट गिरते गिरते,
दिन बारह वर्षो मे
घूडे के भी सुने गये है फिरते!

रस पिया सखि, नित्य जहाँ नया,
अब अलभ्य वहाँ विष हो गया,

न सपने सपने रह पायँगे,
प्रकटता अपनी दिखलायँगे ।

अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल-तिल काट रही थी दृगजल-धार ।

जयशंकर 'प्रसाद'

श्री प्रसादजी का जन्म सन् १९४६ में काशी में वैश्य कुल में हुआ। अल्पावस्था में ही पितृसुख से वंचित हो अध्ययन छोड़ना पड़ा। आगे जाकर गंभीर गवेषणा, व अतीत गौरव के प्रति अभिरुचि जागृत हुई। 'इन्दु' के प्रकाशन ने इनकी काव्य-प्रतिभा की प्रथम-रश्मियों का स्वागत किया। इन्होंने हिन्दी साहित्य की सर्वतोमुखी श्रीवृद्धि की। इन पर अद्वैत, शैव व बौद्ध दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है। संस्कृत व बंगला की सौंदर्य-भावना से काव्य-प्रेरणा मिली। मौलिक नाटककार, कहानी-उपन्यासकार के साथ-साथ आप 'कामायनी' जैसे अद्वितीय महाकाव्य के कुशल शिल्पी हैं। इनके ग्रंथ ये हैं —

एकांकी नाटक—सज्जन, प्रायश्चित्त, कल्याणी-परिणय।

गीति नाटक—करुणालय। **खंड काव्य**—प्रेमपथिक, महाराणा का महत्त्व।

नाटक—विशाख, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी।

गीति काव्य—झरना, लहर, आँसू। **रूपक-नाट्य**—कामना, एक घूट।

कहानी—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

उपन्यास—तितली, कंकाल, इरावती।

निबंध-प्रबंध—प्रथम पांच प्रबन्ध (चित्राधार में), नाटकों की भूमिका।

महाकाव्य—कामायनी।

सैद्धान्तिक-आलोचना—'काव्य और कला'।

इनकी भाव-प्रधान, गीत्यात्मक रचनाएँ गंभीर ओजस्विनी संस्कृत शैली में संस्कृत मानस को रस-सिक्त करती हैं।

नेत्र निमीलन करती मानो
प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने;
जलधि लहरियों की अँगड़ाई
बार बार जाती सोने ।

सिंधु सेज पर धरा-वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किये-सी ऐंठी-सी ।

देखा मनु ने वह अतिरंजित
विजन विश्व का नव एकांत;
जैसे कोलाहल सोया हो
हिम शीतल जड़ता-सा श्रांत ।

इंद्रनील मणि महा चषक था
सोम रहित उलटा लटका;
आज पवन मृदु साँस ले रहा
जैसे बीत गया खटका ।

वह विराट् था हेम घोलता
नया रंग भरने को आज;
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कुतूहल का था राज ।

एक यवनिका हटी, पवन से
प्रेरित माया पट जैसी;
और आवरण-मुक्त प्रकृति थी
हरी भरी फिर भी वैसी ।

स्वर्ण शालियो की कलमें थी
दूर दूर तक फैल रही,
शरद इंदिरा के मन्दिर की
मानो कोई गैल रही ।

विश्व-कल्पना-सा ऊँचा वह
सुख शीतल सन्तोष निदान,
और डूबती-सी अचला का
अवलंबन मणि रत्न निधान ।

अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर,
निद्रा मे सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर ।

उमड रही जिसके चरणो म
नीरवता की विमल विभूति,
शीतल झरनो की धाराये
बिखराती जीवन अनुभूति ।

उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है
क्षितिज बीच अरुणोदय कांत;
लगे देखने लुब्ध नयन से
प्रकृति विभूति मनोहर शांत।

पाक यज्ञ करना निश्चित कर
लगे शालियों को चुनने,
उधर वह्नि ज्वाला भी अपना
लगी धूम पट थी बुनने।

शुष्क डालियों से वृक्षों की
अग्नि अर्चियाँ हुईं समिद्ध,
आहुति को नव धूम गंध से
नभ कानन हो गया समृद्ध।

और सोच कर अपने मन में,
जैसे हम हैं बचे हुए,
क्या आश्चर्य और कोई हो
जीवन लीला रचे हुए।

अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ
कहीं दूर रख आते थे;
होगा इससे तृप्त अपरिचित
समझ सहज सुख पाते थे।

दुख का गहन पाठ पढ़ कर अब
सहानुभूति समझते थे;
नीरवता की गहराई में
मग्न अकेले रहते थे।

मनन किया करते वे बैठे
ज्वलित अग्नि के पास वहाँ,
एक सजीव तपस्या जैसे
पतझड़ में कर वास रहा।

फिर भी धड़कन कभी हृदय में
होती, चिन्ता कभी नवीन;
यों ही लगा बीतने उनका
जीवन अस्थिर दिन-दिन दीन।

प्रश्न उपस्थित नित्य नये थे
अंधकार की माया में;
रंग बदलते जो पल-पल में
उस विराट की छाया में।

अर्ध प्रस्फुटित उत्तर मिलते
प्रकृति सकर्मक रही समस्त,
निज अस्तित्व बना रखने में
जीवन आज हुआ था व्यस्त।

तप मे निरत हुए मनु, नियमित—
कर्म लगे अपना करने ।
विश्व रग मे कर्मजाल के
सूत्र लगे घन हो घिरने ।

उस एकांत नियति शासन में
चले विवश धीरे धीरे,
एक शांत स्पन्दन लहरों का
होता ज्यो सागर तीरे ।

विजन जगत की तद्रा मे
तब चलता था सूना सपना,
ग्रह पथ के आलोक वृत्त मे
काल जाल तनता अपना ।

प्रहर दिवस रजनी आती थी
चल जाती सदेश-विहीन,
एक विराग-पूर्ण ससृति में
ज्यो निष्फल आरभ नवीन ।

धवल मनोहर चन्द्र बिम्ब मे
अकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ,
जिसमे शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्गीथ ।

तप से संयम का संचित बल
तृषित और व्याकुल था आज,
अट्टहास कर उठा रिक्त का
वह अधीर तम, सूना राज।

धीर समीर परस से पुलकित
विकल हो चला श्रांत शरीर।
आशा की उलझी अलकों से
उठी लहर मधुगन्ध अधीर।

मनु का मन था विकल हो उठा
संवेदन से खाकर चोट,
संवेदन! जीवन जगती को
जो कटुता को देता घोट।

"आह! कल्पना का सुन्दर यह
जगत मधुर कितना होता!
सुख स्वप्नों का दल छाया में
पुलकित हो जगता-सोता।

संवेदन का और हृदय का
यह संघर्ष न हो सकता,
फिर अभाव असफलताओं की
गाथा कौन कहाँ बकता!

कब तक और अकेले ? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो,
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो !

"तम के सुन्दरतम रहस्य, हे
कांति किरण रंजित तारा !
व्यथित विश्व के सात्विक शीतल
बिन्दु, भरे नव रस सारा।

आतप तापित जीवन की
सुख शांतिमयी छाया के देश,
हे अनन्त की गणना ! देते
तुम कितना मधुमय संदेश !

आह शून्यते ! चुप होने में
तू क्यों इतनी चतुर हुई,
इंद्रजाल जननी ! रजनी तू
क्यो अब इतनी मधुर हुई ?

"जब कामना सिन्धु तट आई
ले सध्या का तारा दीप,
फाड़ सुनहली साडी उसकी
तू हँसती क्यों अरी प्रतीप ?

[illegible]
[illegible],
[illegible]
तू [illegible] मृदु हास।

किन कमलों की मृदुल मधुकरी
रजनी तू किस कोने में—
आती चुमचुम चल जाती
पड़ी हुई किस टोने में?

किस दिगन्त-रेखा में इतनी
संचित कर सिसकी-सी साँस,
यों समीर मिस हाँफ रही-सी
चली जा रही किसके पास?

विकल खिलखिलाती है क्यों तू?
इतनी हँसी न व्यर्थ बिखेर,
तुहिन कणों, फेनिल लहरों में,
मच जावेगी फिर अंधेर।

घूँघट उठा देख मुसक्याती
किसे ठिठकती-सी आती,
विजन गगन में किसी भूल-सी
किसको स्मृति पथ में लाती?

रजत कुसुम के नव पराग-सी
उड़ा न दे तू इतनी धूल;
इस ज्योत्स्ना की, अरी बावली!
तू इसमें जावेगी भूल।

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल;
देख, बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल।

फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली!
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली-भाली।

ऐसे अतुल अनन्त विभव में
जाग पड़ा क्यों तीव्र विराग?
या भूली-सी खोज रही कुछ
जीवन की छाती के दाग!

मैं भी भूल गया हूँ कुछ,
हाँ स्मरण नहीं होता, क्या था!
प्रेम, वेदना, भ्रांति या कि क्या?
मन जिसमें सुख सोता था!

मिले कहीं वह पड़ा अचानक
उसको भी न लुटा देना,
देख तुझे भी दूँगा तेरा
भाग, न उसे भुला देना।

(४)

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

राम की शक्ति-पूजा

(खण्ड-काव्य)

राम की शक्ति-पूजा

रवि हुआ अस्त: ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ-गर्जित स्वर,
प्रतिपल–परिवर्तित–व्यूह, — भेद-कौशल-समूह,—
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,—क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन-हत – लक्ष्य – बाण,
लोहितलोचन - रावण - मदमोचन - महीयान,
राघव-लाघव—रावण-वारण—गत - युग्म-प्रहर,
उद्धत लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल विस्तर,
अनिमेष राम—विश्वजिद्दिव्य-शर भंग-भाव,—
विद्धांग—बद्ध-कोदंड-मुष्टि—खर रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल बल,—
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण - गवाक्ष - गय - नल, —
वारित - सौमित्र–भल्लपति—अगणित - मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत् - केवल - प्रबोध,

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्री निरालाजी का जन्म संवत् १९५५ में मेदिनीपुर (बंगाल) में हुआ। बंगाली व संस्कृत के योग से आपने हिन्दी में काव्य-साधना प्रारम्भ की। संगीत की सरसता और दर्शन की दृढ़ता से इनके काव्य-मन्दिर की भाव-प्रतिमा का निर्माण हुआ है। छायावाद की प्रथम प्रवर्तक त्रयी में एक होते हुए भी उसे पुष्ट व ठोस पृष्ठभूमि देने में वे समर्थ हुए हैं। दर्शन व अध्यात्म के सुखद समन्वय ने छायावादी काव्यपट को इन्द्रधनुषी रूप-रंग दिया है। छंदों के बंधनों से जड़ित काव्य-कामिनी को उन्मुक्त करने का श्रेय आपको प्राप्त हुआ है। भाव व कला सौंदर्य के साथ काव्य में नादसौंदर्य को आपने प्रधानता दी है। इनकी साहित्य साधना का क्षेत्र परिमाण व प्रभाव में विस्तृत और विशाल है। आपके काव्य-ग्रंथ ये हैं :—

काव्य—*अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, बेला, कुकरमुत्ता*, अणिमा, अपरा, नये पत्ते, राम की शक्ति-पूजा।

रेखा चित्र—कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

कहानी संग्रह—लिली, चतुरी चमार, सखी, सुकुल की बीवी।

उपन्यास—अप्सरा, अलका, प्रभावती, उच्छृंखल, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली।

आलोचनात्मक—प्रबंध पद्म, प्रबंध परिचय, रवीन्द्र कविता कानन।

जीवन चरित—राणा प्रताप, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुंतला, भीम आदि।

अनूदित-ग्रंथ—महाभारत, रामकृष्ण रसनामृत, विवेकानन्दजी के भाषण, दुर्गेशनन्दिनी, गोविन्ददास पदावली आदि।

आप 'मतवाला' पत्र के संपादक भी रह चुके हैं।

'राम की शक्ति-पूजा' उनकी सबसे प्रौढ़, ओजस्विनी रचना है।

राम की शक्ति-पूजा

रवि हुआ अस्त: ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ-गर्जित स्वर,

प्रतिपल–परिवर्तित–व्यूह, -- भेद-कौशल-समूह,--
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह,--क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,

विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन-हत – लक्ष्य – बाण,
लोहितलोचन - रावण - मदमोचन - महीयान,
राघव-लाघव—रावण-वारण—गत - युग्म-प्रहर,
उद्धत लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल विस्तर,
अनिमेष राम—विश्वजिद्दिव्य-शर भंग-भाव,—
विद्धांग—बद्ध-कोदंड-मुष्टि—खर रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल बल,—
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण - गवाक्ष - गय - नल, —
वारित - सौमित्रि-भल्लपति—अगणित - मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध -हनुमत् - केवल - प्रबोध,

उद्गीरित-वह्नि-भीम - पर्वत - कपि - चतुःप्रहर,—
जानकी - भीरु-उर – आशाभर,—रावण-सम्वर ।

लौटे युग-दल । राक्षस-पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।

वानर-वाहिनी खिन्न, लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर-दल ज्यों विभिन्न,

प्रशमित है वातावरण; नमित-मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता-पल पीछे वानर-वीर सकल;

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बंध स्रस्त—तूणीर-धरण,

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार ।

आये सब शिविर, मानु पर पर्वत के, मन्थर,
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर

सेनापति दल-विशेष के, अंगद, हनुमान,
नल, नील, गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान

करने के लिये, फेर वानर-दल आश्रय-स्थल ।
बैठे रघुकुल मणि श्वेत शिला पर; निर्मल जल

ले आये कर-पद-क्षालनार्थ पटु हनुमान;
अन्य वीर सर के गये तीर संध्या-विधान—

वन्दना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर

पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण भल्लधीर
सुग्रीव, प्रांत पर पाद-पद्म के, महावीर,

यूथपति अन्य जो, यथास्थान, हो निर्निमेष
देखते राम का जित-सरोज-मुख-श्याम-देश ।

है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार,

अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय

जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपुदम्य—श्रान्त,—
एक भी, अयुत—लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त

कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जगी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत

देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन

नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण,—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान—पतन,—

काँपते हुए किसलय,—झरते पराग-समुदय,—
गाते खग नव-जीवन-परिचय,—तरु मलय-वलय,—

ज्योति प्रपात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,—
जानकी-नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय—

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,

फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आई भर,

वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत,—
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,

देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर,

फिर देखी भीमा मूर्ति आज रणदेवी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,

ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझ कर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन,

लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेषशयन,—
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन,

फिर सुना—हँस रहा अट्टहास रावण खलखल, २०३
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल।

बैठे मारुति देखते राम-चरणारविन्द—
युग 'अस्ति-नास्ति' के एक-रूप, गुण-गण-अनिन्द्य,

साधना मध्य भी साम्य—वाम-कर दक्षिण-पद,
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गद्गद्

पा सत्य, सच्चिदानन्दरूप, विश्राम-धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम-नाम।

युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कपि ने चमके नभ में ज्यों तारादल,—

ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ—
सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ,

टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल,
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल

बैठे वे वहीं कमललोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख, निश्चेतन।

"ये अश्रु राम के" आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,

हो श्वसित पवन-उनचास, पिता-पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर वहा वाष्प को उडा अतुल,

शत घूर्णावर्त तरग-भग उठते पहाड़,
जल-राशि राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड,

तोडता वन्ध—प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ वढता समक्ष

शत-वायु-वेग-वल, डुवा अतल में देश-भाव,
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल मे महाराव

वज्राग तेजघन वना पवन को, महाकाश
पहुँचा एकादशरुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।

रावण-महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार,
यह रुद्र राम-पूजन-प्रताप तेज. प्रसार;

उस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कन्ध-पूजित,
इस ओर रुद्र-वन्दन जो रघुनन्दन-कूजित;

करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि वढा अटल,
लख महानाश शिव अचल हुए क्षण भर चचल,

श्यामा के पदतल-भारधरण हर मन्दस्वर
बोले "सम्वरो देवि निज तेज, नही वानर

यह,—नही हुआ शृङ्गार-युग्म-गत, महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर,

चिर-ब्रह्मचर्य-रत, ये एकादश रुद्र धन्य,
मर्यादा-पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य,

लीला-सहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,

विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि निश्चय होगा दूर रोध।"

कह हुए मौन शिव, पवनतनय में भर विस्मय
सहसा नभ में अजना रूप का हुआ उदय,

बोली माता—"तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल,

यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह,
यह लज्जा की है बात कि मा रहती सह-सह,

यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल—
पूजते जिन्हें श्रीराम, उसे ग्रसने को चल

क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ?—सोचो मन में,
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्रीरघुनन्दन ने ?

तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य—
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिये धार्य ?"

कपि हुए नम्र, क्षण में माताछवि हुई लीन,
उतरे धीरे-धीरे, गह प्रभु पद हुए दीन।

राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण,
"हे सखा", विभीषण बोले, "आज प्रसन्न वदन

वह नही देखकर जिसे समग्र वीर वानर—
भल्लूक विगत-श्रम हो पाते जीवन निर्जर;

रघुवीर, तीर सब वही तूण मे है रक्षित,
है वही वक्ष, रण-कुशल हस्त, बल वही अमित;

है वही सुमित्रानन्दन मेघनाद-जित-रण,
है वही भल्लपति, वानरेन्द्र सुग्रीव प्रमन,

तारा-कुमार भी वही महाबल श्वेत धीर,
अप्रतिभट वही, एक—अर्बुद-सम, महावीर,

है वही दक्ष सेना-नायक, है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव-प्रहर?

रघुकुलगौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण !

कितना श्रम हुआ व्यर्थ ! आया जब मिलन-समय,
तुम खीच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय !

रावण, रावण लम्पट, खल, कल्मष-गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पाद-प्रहार,

बैठा वैभव मे देगा दुख सीता को फिर,—
कहता रण की जय-कथा पारिषद-दल से घिर;—

सुनता वसन्त में उपवन में कल-कूजित पिक,
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव धिक् धिक् !"

सब सभा रही निस्तब्ध, राम के स्तिमित नयन
छोड़ते हुए शीतल प्रकाश देखते विमन,

जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव न हो कोई दुराव

ज्यों हों वे शब्द मात्र—मैत्री की समनुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।

कुछ क्षण तक रह कर मौन सहज निज कोमल स्वर
बोले रघुमणि—"मित्रवर विजय होगी न समर

यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण

अन्याय जिधर है उधर शक्ति !" कहते छल-छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल

रुक गया कण्ठ, चमका लक्ष्मण-तेजः प्रचण्ड
धँस गया धरा में कपि गह युग पद मसक दण्ड

स्थिर जाम्बवान,—समझते हुए ज्यों सकल भाव
व्याकुल सुग्रीव,—हुआ उर में ज्यों विषम घाव

निश्चित सा करते हुए विभीषण कार्य-क्रम
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम।

निज सहज रूप मे संयत हो जानकीप्राण
बोले—"आया न समझ में यह दैवी विधान,

रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर—
यह रहा शक्ति का खेल समर, शकर, शकर!

करता मैं योजित बार-बार शर निकर निशित,
हो सकती जिनसे यह ससृति सम्पूर्ण विजित,

जो तेज-पुज, सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिनमे निहित पतनघातक सस्कृति अपार—

शत-शुद्धि-बोध-सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक,
जिनमे है क्षात्रधर्म का धृत पूर्णाभिषेक,

जो हुए प्रजापतियो से सयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण मे श्रीहत, खडित!

देखा, है महाशक्ति रावण को लिये अक,
लाछन को ले जैसे शशाक नभ में अशक;

हत मन्त्रपूत शर सवृत करती बार बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार!

विचलित लख कपिदल, क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों,

पश्चात्, देखने लगी मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिचा न धनु, मुक्त ज्यो बँधा मैं हुआ त्रस्त!"

कह हुए भानुकुलभूषण वहाँ मौन क्षण भर
बोले विश्वस्त कण्ठ से जाम्बवान—"रघुवर,

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण
हे पुरुषसिंह तुम भी यह शक्ति करो धारण,

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,

रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त,

शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन!

तब तक लक्ष्मण है महावाहिनी के नायक
मध्य भाग में, अंगद दक्षिण—श्वेत सहायक,

मैं भल्ल-सैन्य, है वाम पार्श्व में हनुमान,
नल, नील और छोटे कपिगण—उनके प्रधान,

सुग्रीव, विभीषण, अन्य यूथपति यथासमय
आयेंगे रक्षाहेतु जहाँ भी होगा भय।"

खिल गई सभा। "उत्तम निश्चय यह, भल्लनाथ!"
कह दिया वृद्ध को मान राम ने झुका माथ।

हो गये ध्यान में लीन पुन करते विचार,
देखते सकल—तन पुलकित होता बार-बार।

कुछ समय अनन्तर इन्दीवर-निन्दित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन।

बोले आवेग-रहित स्वर से विश्वास-स्थित—
"मातः, दशभुजा, विश्व-ज्योतिः मैं हूँ आश्रित,

हो विद्ध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित,
जनरंजन चरण कमल-तल, धन्य सिंह गर्जित!

यह, यह मेरा प्रतीक, मातः, समझा इंगित,
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित।"

कुछ समय स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न,
फिर खोले पलक कमल-ज्योतिर्दल ध्यान-लग्न;

हैं देख रहे मन्त्री, सेनापति वीरासन
बैठे उमड़ते हुए, राघव का स्मित आनन।

बोले भावस्थ चन्द्र-मुख-निन्दित रामचन्द्र,
प्राणों में पावन कम्पन भर, स्वर मेघमन्द्र—

"देखो, बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित-शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर,

पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द-बिन्दु;
गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु,

दशदिक्-समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर;

लख महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व—
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व।"

फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर से अन्तर सींचते हुए—

"चाहिए हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर,
कम से कम, अधिक और हो, अधिक और सुन्दर

जाओ देवीदह, उषःकाल होते सत्वर,
तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।"

अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व, स्थान,
प्रभु-पद-रज सिर धर चले हर्ष भर हनूमान।

राघव ने विदा किया सबको जान कर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय।

निशि हुई विगत, नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा-ज्योति-हिरण

है नहीं शरासन आज हस्त—तूणीर स्कन्ध
वह नहीं सोहता निविड-जटा-दृढ मुकुट-बन्ध,

सुन पड़ता सिंहनाद,—रण-कोलाहल अपार
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार,

पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम,

यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल,

कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल

देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयनद्वय—

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!

जानकी! आह, उद्धार, दुःख जो न हो सका!"
वह एक और मन रहा राम का जो न थका,

जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,

बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत-गति, हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।

"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन—
"कहती थी माता मुझे सदा राजीवनयन!

दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"

कह कर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा
ले लिया हस्त, लक-लक करता

ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन।

जिस क्षण बँध गया बेधने को दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्मांड, हुआ देवी का त्वरित उदय—

"साधु, साधु, साधक धीर, धर्मधन धन्य राम!"
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।

देखा राम ने—सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;

ज्योतिर्म्मय रूप, हस्त दश विविध-अस्त्र-सज्जित,
मन्दस्मित-मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,

हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बाँयें रण-रंग-राग,

मस्तक पर शंकर—। पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्रीराघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर।

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!"
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

(५)

श्री सुमित्रानंदन पंत

मुक्तक-काव्य

(१) उर की डाली
(२) पर्वत-प्रदेश में पावस
(३) कलरव
(४) भारतमाता
(५) बापू के प्रति
(६) सन्ध्या तारा
(७) नौका-विहार
(८) दुःख में सुख
(९) मधुवन

सुमित्रानंदन पंत

श्री पंतजी का जन्म अल्मोड़ा के पास कौसानी गाँव मे सवत् १९५७ मे हुआ। वही प्रकृति के सुरम्य प्रागण मे ही प्रारंभिक शिक्षा हुई, फिर काशी मे सेंट्रल कालेज मे भर्ती हो गये, पर असहयोग आन्दोलन मे पढाई छोड कर साहित्य सेवा मे जुट जाना पडा। हिन्दी-सस्कृत के साथ बगाली व अग्रेजी का अध्ययन, मनन भी इन्होने किया। उपनिषद्-दर्शन का इनके मनन व चिंतन पर प्रभूत प्रभाव है। परपरागत भाव, भाशा, अलकार, शैली, छन्द की रूढपद्धति को छोडकर नवीन योजना के प्रयोग की मौलिकता भी इन्होने दिखाई है। प्रकृति प्रेम से आपने काव्य-रचना की सप्तपदी की। प्रकृति को परमतत्व से अनुप्राणित चैतन्य सत्त्व के रूप मे आपने देखा है। काव्य शिल्प के पतजी कुशल शिल्पी है। चित्रोपमता व सगीतात्मकता के सश्लेष मे कला का सस्कार किया है। इनके काव्यग्रथ ये है —

काव्य—वीणा, ग्रथि, गुजन, पल्लव, पल्लविनी, युगात, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, मधुज्वाल, युगपथ, उत्तरा।

उपन्यास—हार। कहानी संग्रह—पाँच कहानियाँ।

नाटक—ज्योत्स्ना। अनूदित ग्रंथ—उमर खैयाम की रुबाइयाँ।

इनके काव्यग्रथ सतत विकासशील मानस की सोपान-परपरा है। इनके काव्यात्मक व्यक्तित्व का विकास सुन्दर सत्य शिव के रूप में हुआ। छायावादी सौदर्योपासना से प्रारभ होकर मार्क्सवाद व गाधीवाद से प्रभावित हो वे प्रगतिवाद की प्रवृत्तियो के प्रवर्तक बने। इन्होने श्री उदयशकर के साथ मिलकर 'कल्पना' नामक चित्रपट का भी निर्माण किया है।

उर की डाली

देखूं सबके उर की डाली—

किसने रे क्या क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल
इसमें कलि, किसलय कुसुम शूल !

किस छवि, किस मधु के मधुर भाव ?
किस रंग, रस, रुचि से किसे चाव ?
कवि से रे किसका क्या दुराव ?

किसने ली पिक की विरह-तान ?
किसने मधुकर का मिलन-गान ?
या फुल्ल कुसुम या मुकुल म्लान ?

देखूं सबके उर की डाली

सब में कुछ सुख के तरुण फूल
सब में कुछ दुख के करुण शूल,—
सुख-दुःख न कोई सका भूल !

—

पर्वत-प्रदेश में पावस

पावस ऋतु थी, पर्वत - प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेश।

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल मे निज महाकार,

—जिसके चरणों में पाल ताल
दर्पण सा फैला है विशाल !

गिरि का गौरव गाकर झर्‌झर्
मद से नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों - से सुन्दर
झरते हैं झागभरे निर्झर।

गिरिवर के उर से उठउठकर
उच्चाकाक्षाओ - से तरुवर
है झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर ।

—उड़ गया अचानक, लो, भूधर
फड़का अपार पारद के पर !
रव-शेष रह गये हैं निर्झर
है टूट पड़ा भू पर अम्बर !

धँस गये धरा में सभय शाल !
उठ रहा धुँआँ, जल गया ताल !
—यों जलद यान में विचर विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल !
(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर)

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी,
सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

—यह लौकिक औ' प्राकृतिक कला,
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आ रहा,—सृष्टि के साथ पला !

× ×

गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की सन्ध्या की छवि !
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात फिर आवे रवि !

भारतमाता

भारतमाता
ग्रामवासिनी !

खेतो मे फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला सा आँचल,
गगा यमुना में आँसू जल,

मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी !

दैन्य-जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग युग के तम से विषण्ण मन,

वह अपने घर में
प्रवासिनी ।

तीस कोटि सन्तान नग्न तन,
अर्ध-क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,

नतमस्तक
तरुतल-निवासिनी

स्वर्ण शस्य पर-पद-तल-लुण्ठित,
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित,
क्रन्दन-कम्पित अधर मौन स्मित,

राहुग्रसित
शरदिन्दु-हासिनी ।

चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित,
नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
आनन - श्री छाया-शशि उपमित,

ज्ञानमूढ़
गीता-प्रकाशिनी ।

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,

जगजननी
जीवन विकासिनी ।

बापू के प्रति

तुम मांस हीन, तुम रक्त हीन,
हे अस्थिशेष ! तुम अस्थि हीन,

तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन !

तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव - शून्य लीन,

आधार अमर होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन !

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त अस्थि—
निर्मित जिनसे नव युग का तन,
तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन।
इस भस्मकाम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने - बानों से मानवपन !
सदियों का दैन्य तमिस्र तूम,
धुन तुमने, कात प्रकाश सूत,

निर अविचल पर तारक अमन्द ।
जानता नहीं वह छन्द बन्ध ।
वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असग सुख मे विलीन
स्थित निज स्वरूप मे चिर नवीन ।
निष्कम्प शिखा सा वह निरुपम, भेदता जगत जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र वह सम ।

× × ×

गुजित अलि सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अधकार
हलका एकाकी व्यथा भार ।
जगमग जगमग नभ का आँगन, लद गया कुंदकलियो से घन
वह आत्म और यह जग दर्शन ।

नौका-विहार

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत नीरव भूतल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर।
साड़ी की सिकुड़न सी जिसपर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर।
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।
सिकता की सस्मित सीपी पर, मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें बँधी, खुला लंगर।
मृदु मंद मंद मंथर मंथर, लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के [illegible]
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बि[illegible]त निर्भर
दुहरे [illegible]

कालाकाँकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन ।
नौका से उठती जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर ।

विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल,
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किये अविरल,
फिरती लहरें लुक छिप पल पल ।

सामने शुक्र की छवि झलमल, तैरती परी सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल ।

लहरों के घूघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख,
दिखलाता मुग्धा सा रुक रुक ।
अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार ।

दो बाहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर ।

अतिदूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू रेखा सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल,
मां के उर पर शिशु सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप,
वह कौन विहग? क्या विकल कोक, उड़ता हरने निज विरह शोक?
छाया की कोकी को विलोक ।

पतवार घुमा; अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार ।
डाँडों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन स्फार,
बिखराती जल में तार हार।
चाँदी के साँपों सी रलमल, नाचतीं रश्मियाँ जल मे चल,
रेखाओं सी खिच तरल सरल ।
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ सौ शशि, सौ सौ उडु झिलमिल,
फैले फूले जल में फेनिल ।
अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह ।
ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार ।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत सगम ।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन - नौका विहार ।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान ।

दुःख से सुख

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा !

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना ।

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली ।

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने-सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणों का धन ।

दुख-दावा से नव-अंकुर
पाता जग-जीवन का वन,
करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव-जीवन-कण ।

मधुवन

डोलने लगी मधुर मधुवात
हिला तृण, व्रतति, कुंज, तरु-पात,
डोलने लगी प्रिये, मृदु-वात
गुंज-मधु - गन्ध - धूलि - हिम - गात ।

खोलने लगी, शयित-चिरकाल
नवल-कलि अलस-पलक-दल-जाल,
बोलने लगी, डाल से डाल
प्रमुद, पुलकाकुल कोकिल-बाल ।

युवाओं का प्रिय-पुष्प गुलाब,
प्रणय-स्मृति-चिह्न, प्रथम मधुबाल
खोलता लोचन-दल मदिराभ,
प्रिये, चल अलिदल से वाचाल ।

आज मुकुलित-कुसुमित चहुँ ओर
तुम्हारी छवि की छटा अपार,
फिर रहे उन्मद मधु प्रिय भौंर
नयन पलकों के पंख पसार ।

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के बन मे ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार
लालिमा की लौ मे उठ लाल ।

कपोलों की मदिरा पी, प्राण !
आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक-नासा का धर ध्यान
बन गये पुष्प पलाश अराल ।

खिल उठी चल-दमनावलि आज
कुन्द-कलियों मे कोमल-आभ,
एक चंचल-चितवन के व्याज
तिलक को चारु छत्र-सुख लाभ ।

तुम्हारे चल-पद चूम निहाल
मंजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल
सतत-सिंचित प्रियङ्गु की बाल ।

स्वर्ण-कलियों की रुचि सुकुमार
चुरा चम्पक तुमसे मृदु-वास,
तुम्हारी शुचि स्मिति से साभार
भ्रमर को आने दे क्यो पास ?

देख चंचल मृदु-पटु पद-चार
लुटाता स्वर्ण-राशि कनियार,
हृदय फूलों में लिए उदार
नर्म-मर्मज्ञ मुग्ध मन्दार ।

तुम्हारी पी मुख-वास-तरंग
आज बौरे भौंरे, सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि ! तुम-सी बनने सुकुमार ।

लालिमा भर फूलों में, प्राण !
सीखती लाजवती मृदु लाज,
माधवी झुक करती सम्मान
देख तुममें मधु के सब साज ।

नवेली बेला उर की हार,
मोतिया मोती की मुसकान
मोगरा कर्णफूल-सा स्फार,
अँगुलियाँ मदन-वान की बान ।

तुम्हारी तनु-तनिमा लघु-भार
बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल,
मृदुलता सिरिस-मुकुल सुकुमार,
विपुल पुलकावलि चीना-डाल ।

प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुषमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छवि-व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास ।

(६)

सुश्री महादेवी वर्मा

गीति-काव्य

(१) विरह का जलजात
(२) बीन भी हूँ मैं ..
(३) मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
(४) मैं नीर भरी दुख की बदली !
(५) क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

महादेवी वर्मा

आपका जन्म फर्रुखाबाद मे सवत् १९६४ में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा इदौर मे हुई। विवाह के पश्चात् ही मैट्रिक से लेकर एम. ए. तक इनका व्यवस्थित अध्ययन हुआ। इन्होनें 'चाद' की सपादिका के रूप मे कार्य किया। फिर प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की आचार्या के पद पर वे नियुक्त की गई। इनकी रचना 'नीरजा' पर 'सेक्सरिया पुरस्कार' और 'यामा' पर मगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। विविध साहित्यिक विधाओं में आपको सृजनशील प्रतिभा प्राप्त है। आपका भावुक हृदय सूक्ष्म, कोमल व मधुर भावनाओ से उद्वेलित रहता है। श्रीमती वर्मा का व्यक्तित्व मध्य-युगीन मीरा का आधुनिक सस्करण है। मीरा की वेदना, विह्वलता, विवशता, आर्द्रता अधिक तीव्रता से इनके गीतो मे मुखरित हुई है। विरहिणी की आत्मा इनके काव्य में समाई हुई है। श्रीमती वर्मा का काव्यकानन सीमित होते हुए भी करुणा कलित हृदय के मधुर भावों के अबाध उत्स से सिंचित रहता है। आपकी प्रधान रचनाएँ ये है :—

काव्य—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा। प्रथम तीन ग्रंथो का एक पूर्ण संकलन 'यामा' मे हुआ है।

निबंध—शृखला की कडियाँ, अतीत के चलचित्र।

आलोचना—हिन्दी का विवेचनात्मक गद्य।

उच्चकोटि की कवयित्री होने के साथ-साथ आप चित्रकला में भी दक्ष है। इनके काव्य की वेदना-विवृत्ति ने भवभूति के 'एको रसः करुणएव' को प्रमाणित कर दिया है। वर्तमान हिन्दी के गीति-साहित्य के सौष्ठव व सौरभ का समस्त श्रेय इनको है। इनकी काव्य-साधना की दीपशिखा अपना स्निग्ध प्रकाश सतत फैला रही हैं।

गीत

(१)

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल कण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात।
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु की ही हाट बन आती करुण बरसात !
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में बात।
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके नीला कमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।
जीवन विरह का जलजात !

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी।
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

(३)

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूम बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल!
पुलक पुलक मेरे दीपक जल!

सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझसे ज्वाला-कन;
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल !'
सिहर सिहर मेरे दीपक जल!

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेह हीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता,

विद्युत् ले घिरता है बादल;
विहँस विहँस मेरे दीपक जल।

द्रुम के अंग हरित कोमल तम,
ज्वाला को करते हृदयंगम
वसुधा के जड अन्तर में भी
बंदी है तापों की हलचल!
बिखर बिखर मेरे दीपक जल।

मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का डर कर,
मैं अंचल की ओट किये हूं,
अपनी मृदु पलकों से चंचल!
सहज सहज मेरे दीपक जल!

मेरा पग पग संगीत भरा,
श्वासों में स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय बयार पली !

मैं क्षितिज भृकुटि पर घिर धूमिल
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज कण पर जल कण हो बरसी,
नव जीवन अंकुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में,
सुख की सि[illegible] अंत खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

(५)

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुन्दर मदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनंदन रे !
पद रज धोने उमड़े आते लोचन मे जलकण रे !
अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक मे नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते रहते है प्रतिपल मेरे स्पंदन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !

टिप्पणियाँ व शब्दार्थ संकेत

१—कृष्ण-संदेश (श्री उपाध्याय)

पृष्ठ ९७—बलवीर-बन्धु—उद्धव । ९८—पय-नीर—दूध-पानी। ९९—विपाशा—व्यास नदी। जह्नुजा—गंगा। १००—स्वार्थोपरत—स्वार्थ रहित। १०१—कदिचदावेग—किसी भावावेश से। १०२—क्रीड़ा-अवनि—कार्य क्षेत्र। वैचित्र्यों से वलित—विचित्रता से पूर्ण। १०३—मूली-भूता ... वृत्तियाँ हैं—प्रेम भावात्मक नहीं, सात्विक बुद्धिजन्य होता है। प्रमिति—ज्ञान। १०४—होके ... उसीको—प्रेम वह सात्विक वृत्ति है जो बिना पुण्य, धन व यश की लालसा के स्वतः प्रिय के लिए आत्म-समर्पण करवा देती है। १०५—होता है ... सद्गुणों की—रूप रसादि ही प्रेम के मूल में रहते हैं, अथवा सद्गुणों का सौंदर्य प्रेम का आधार है। १०६—वारि-स्रावी दृगों में—अश्रुपूरित नेत्रों में। १०७—ओप—ओज। १०८—कलभ-कर—हाथी की सूंड। गुल्फ—पादग्रंथि। १०९—छाया-ग्राही ... क्या है—जल यदि काँच के समान प्रतिबिम्ब ग्रहण करता है तो आश्चर्य क्या है ? ११०—लोकोल्लासी ... भिन्न होती—सौंदर्य-संभार देखकर तीन भिन्न मनोवृत्ति वाले पात्र तीन भिन्न आशय ग्रहण करते हैं। कामी कामातुर, कोई अन्य आनन्द विभोर, कोई सत्वशील सौंदर्य-स्रष्टा ईश्वर का कृतज्ञ होता है। प्यारे आवें ... न आवें—राधा के मन में मोह-मूलक स्वार्थ भी है, परार्थमूलक प्रेम भी। मोह कृष्ण को आत्म-सुख के लिए बाँधना चाहता है, प्रेम उन्हें लोकहितार्थ स्वच्छन्द विचरण के लिए मुक्त करता है। १११—भोगोपरत—भोग से विरक्त। कंजों का या ... उन्हें पा—(प्रतीप)। ११२—जो आता है न ... उसे क्यों ?—जो "अवाङ्मनसगोचर" या 'यो बुद्धेः परतस्तु सः'। निष्प्राणों ... आदि सो है—स्थूल इंद्रियों के मूल की सूक्ष्म विषय-

ग्राहिणी शक्ति ईश्वरीय अंश है। ११३—तिमिर-हर—सूर्य-चन्द्र। व्यापी है……… प्राणप्यारा—कृष्ण विश्वमय है, विश्व कृष्णमय। ११४—विश्वात्मा—शास्त्रविहित नवधा भक्ति का बौद्धिक निरूपण। ११५—सद्विग्रहों—सुन्दर शरीर (मूर्ति)। सुरति—याद, सँभाल। ११६—दूर्वा से द्युमणि—तिनके से लेकर सूर्य तक। अछत—रहते हुए।

२—उर्मिला की तपःसाधना (श्री गुप्त)

१२१—पूतशीला—पवित्र आचरण वाली। त्यागी भी हैं " · ······ विदेही—(विरोधाभास)। करुणे, क्यों ······ कोई?—वेदना संवेदना का स्पर्श पाकर अधिक उद्वेलित होती है। वेदना वैयक्तिक निधि होते हुए भी विश्व-विभूति की क्षमता रखती है। इसमें प्रसंगतः मुद्रालंकार की योजना है। इस सर्ग की करुणा का स्रोत उत्तर रामचरित है जिसका श्रेय भवभूति को है। पर यहाँ कवि उर्मिला की करुणा को मौलिक महत्त्व देता है। १२२—कलंक जो काला—कैकेयी का स्वार्थ। भूल अवधि ······ जाओ—अवधि का ध्यान विस्मृत कर जाग्रतावस्था में वह प्रियतम को आमंत्रित करती है, पर जब वह आमंत्रण स्वप्न मे प्रतिफलित होता है तो व्रत-भंग से भयभीत हो "जाओ-जाओ" कहती है। आँखों ·· ····· वियोग—(विरोधाभास)—योग साधना से भी वियोग साधना अधिक कठिन है। रुदन्ती (श्लेष)—रोती हुई, तथा एक बूटी। १२३—वर्ण-वर्ण—अनेक अक्षर, तथा नवीन आभा। रासायनिक क्रिया से रस-लेप कर अग्नि में शुद्ध करके लोग ताम्रपत्र को स्वर्ण बना कर नाना कर्णाभूषण बनाते हैं, उसी प्रकार कवि, विरहिणी उर्मिलाके रोदनसे सिक्त विरह-ताप से संतप्त प्रत्येक वर्ण को कर्णाभूषण बना कर, यश प्राप्ति करते हैं। पहले आँखों में ······ कब थे—संयोग मे प्रत्यक्ष दर्शन सुख होता है, पर विरह में मानस-अनुभूति से तादात्म्य। संयोग मे लक्ष्मण की मूर्ति केवल उर्मिला की आँखों में थी, पर वियोग में उनकी मूर्ति मानस मे निमग्न हो गई। उनके कूदने से जो छींटे उड़े वे ही अश्रुरूप में दीख रहे हैं—(ऊहात्मक कल्पना ; अपन्हुति)। विपंची—

वीणा। कर्त्तरी—कैंची। १२४—व्यंजन-भोजन सामग्री। अलौना-सलौना
नमकीन। १२५—चाहे फटा . डालो—धूलि धूसरित वेशभूषा
ध्वनि। अवधि-अर्णव—दनदाम काल का सागर। प्रणय धुरन्धर—प्रे
धुरंधर। १२६—व्योम-सिन्धु . . . बुद्बुद दे रहा—(रूपक) साम्य अ
णिमा के स्थान पर नभ का नील वितान तथा उसमें जगमगाते तारे। क्षणदा
रात्रि। अलीक—मिथ्या-झूठ। आओ घाट—(नींद न आने क
ध्वनि) अपलक आँखें स्वप्न समागम की आतुर प्रतीक्षा में बिछी हैं। १२७
देकर साख . . गोला—(परिवृत्ति अलंकार) चारित्र्य-शुद्धि का प्रमा
हाथों से तप्त गोलक को उठाना। हंस—(श्लेष) सूर्य, तथा राजहंस
नीलनभस्सर—(रूपक) नील नभ रूपी सरोवर। बो बो . स्वर
साल—बिना बोये ही यह विरह की वेदना-निष्पत्ति काटनी पड़ती है
सगीत के स्थान पर रोदन ही सफल है। वराक—बेचारा। १२८—ऊर्ध्व .
. . रुगी हूँ—वासती समीर उसे ऊर्ध्वश्वास के साथ प्रतीत होता है। तपो
योगि . . आइ—निदाघ रूपी तपोधन जग-जीवन के कूड़ा-करक
को जलाता हुआ मेरे द्वार पर अतिथि बना है, मैं उसका दिल खोल
स्वागत करूँगी, न कि खस की टट्टी लगाकर शयन। अन्ध-अवनि-गर्भ-गेह—
भूगृह या तहखाना। हिमांशु-मुख—लक्ष्मण का चन्द्रमुख। तंतुवाय—
मकड़ी। पद (श्लेष)—चरण, तथा किरण। विफल ये दृग दीन—प्रिय
दर्शन के बिना ये नेत्र-मीन दीन हो रहे हैं। ऊष्मानिल—तप्त पवन, लू
१२९—ठहर अरी . धधक उठेगी आग—(ऊहात्मक कल्पना) पंख
झलने से विरहाग्नि और भी धधक उठेगी। सखि, इस बलिहारी—
इस सर्वदा अभाव में भी सयोग स्मृति की मिठास शेष है। तप—ग्रीष्म
विरहा-तप। सारंग—चातक। १३०—घटना हो . . . चन्द्रादित्य—घट
जिस प्रकार सूक्ष्म आकार से बढ़कर सूर्य-चन्द्र समेत समस्त नभ को
ढक लेती है उसी प्रकार एक छोटी घटना विरह की घटा बनकर
संयोग की सुख-दुःखात्मक स्मृतियों को आच्छादित कर रही है।
इन्द्रवधू—(उत्प्रेक्षा, अपन्हुति) दूब का हृदय भी फूट कर बह निकला है।

व्यक्तियों में विभाजित स्पष्ट हो जाता है। १३८—धन के पीछे हे लोगो, वैभव के लिए इतना उपद्रव क्या ठीक है ? घूरे—कूड़े का ढेर। १३९—१ ६ ६ .. शिला—यदि मैं प्रमत्त हो जाऊं तो विरह सर्प स्वयं कीलित हो जायगा। १४०—अवधि-शिला दृगजल-धार—उर्मिला की विरह व्यंजना कितनी मार्मिक है ! हृदय की मिलनी भावनाओं को दबाने के लिए दुर्दैव ने अवधि-शिला उर पर रख दी। उर्मिला के नेत्र की अश्रुधार उस शिला को तिल-तिल काट कर कम करती जा रही थी।

३—आशा (श्री प्रसाद)

१४३—उषा अन्तर्निहित हुई—प्रलय निशा रूपी सपत्नी पराजित हो जल में लीन हो गई तथा उसके स्थान पर उषा स्वर्ण-रश्मि शरों को लेकर विजय-श्री के समान उदय हुई। विवर्ण—उदास। सित सरोज पराग—(उत्प्रेक्षा) हिमशृंग पर स्निग्ध उषालोक ऐसे बिखर रहा था जैसे श्वेत कमल पर मधुस्नात पीत पराग। जगीं वनस्पतियाँ जल से—(प्रकृति का मानवीकरण) उनींदी वनस्पतियाँ मुख-प्रक्षालन करने लगीं। १४४—जलधि सोने—सागर उर्मियाँ अँगड़ाई ले लेकर मानो सोने का उपक्रम कर रही हों। सिंधु सेज पर ऍठी सी—(सागरूपक) धरा नव वधू सिन्धु-शय्या पर एक बात में रूठकर—सिकुड़ कर बैठी थी। अतिरंजित—आलोकित, रम्य। इन्द्रनील लटका—(रूपकातिशयोक्ति) नील नभ का पात्र सुधारस (चंद्र) रिक्त हो लुढ़क रहा था। यह विराट् . . . . . आज—विराट् सत्ता (ईश्वर) नवीन सर्ग चित्रण के लिए प्राची पात्र में अरुण रंग घोल रही थी। १४५—विश्वदेव अम्लान—वह विराट् सत्ता कई रूपों में उद्भावित हुई है, विश्वेदेवा, सूर्य, चंद्र, मरुत्, वरुण—ये समस्त तत्व उसमें नियंत्रित हैं। अरे निबल रहे—(विरोधाभास) शक्ति स्रोत भी विराट् के भ्रूभंग में नितांत अशक्त हो गये। देव न थे . . जुतले—न तो हम (अमर) देवता थे, न थे प्रकृति के तत्व; परिवर्तन ही शाश्वत सत्ता है, हम तो उद्धत अहं में

जुते अश्व हैं। संधान—अनुसंधान। १४६—वीरुध—लता। यह क्या ...... समीर—मेरे करुणार्द्र मानस में सपनों का चित्रपट बनाने वाली आकुलता (आशा) प्राण संचार करने वाली सजीवनी शक्ति सी प्रतीत हो रही है। १४७—यह कितनी .....तान—प्रिय आगमन की अपलक प्रतीक्षा सी मधुर, संगीत स्वर लहरी सी मादक, यह आशा-रश्मि स्मिति बनकर ओठों पर नाच रही है। जीवन ! जीवन . . .. दाह—तुलना कीजिये कॉलेरिज से—
"Water, water everywhere not a drop to drink."
प्राणों का आधार प्राण-नाशक तत्त्व बन रहा है। मैं हूँ .... . गानों में—जीवन अस्तित्व के पश्चात् सुरक्षा की भावना जगती है। अमर वेदना—अनादि वासना की अव्यक्त आकुलता। १४८—शरद.... गल रही—(वस्तूत्प्रेक्षा) दूर तक लहराते हुए स्वर्णशालियों के क्षेत्र शरद् लक्ष्मी के प्रासाद को पहुँचने का पथ हो। ऊँचा वह—उत्तुंग हिमाचल। सानु—चोटी। शीतल झरनों . अनुभूति—निर्झर, जीवन अनुभव के स्रोत से प्रतीत हो रहे थे। १४९—किसी को—चन्द्र की। मानो .. गान—ज्योत्स्ना के सौंदर्य पर हर्षोन्मत्त अचल-मानस के अट्टहास के समान ये निर्झर थे। संध्या छींट—(प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण-रूपक) पर्वत मालाएँ रंग-बिरंगे बादलों की छींट ओढ़े थीं। १५०—मानों तुंग . . उठान—(उत्प्रेक्षा) हिमाचल की उत्तुंगता विश्व की ऊँची तरंग हो। सजग हुई . .. छाया—मनु में दैवी संस्कार प्रादुर्भूत हुए, देव यज्ञ के गुप्त संस्कारों ने उन्हें कर्मकाण्ड में दीक्षित किया। १५२—एक सजीव . . वास-मननशील मनु तपोमूर्ति-से आश्रम में वास कर रहे थे। १५३—विश्व रंग ... . घिरने—जीवन के रंगमंच पर कई प्रकार के कार्य करने पड़े। यह पथ .... अपना—काल-चक्र, नक्षत्र-तारों के आलोक-सूत्रों से अपना ताना-बाना बुन रहा था। एक विराग... .... आरंभ नवीन—निर्वेदपूर्ण मानस में कार्यारम्भ की उपेक्षा जैसे रहती है वैसे ही यन्त्रवत् दिन-रात के क्षण-पल बीतने लगे। उद्गीथ—सामगान। १५४—चंद्रिका-निधि—ज्योत्स्नापूर। अलस चेतना—सुषुप्त चेतना। हृदय कुसुम .... पाँखें—

हृदय की कली खिल गई, उसमें सरस भावनाओं का संचार होने लगा। ध्वनि नील . . उन्मत्त था—नील नभ में चन्द्र-किरणें एवं मानस में रहस्यमय आनन्द का गुंजन कर रही थी। अनादि वासना अनुमान—दृढ़ गुण की कल्पना वासनाजन्य होती है, उसका अनुभव होने लगा। दिवा-रात्रि शृंगार—(यथासंख्य)। १५५—तप में संयम राज—कर्मोनिष्ठ संयम की संचित शक्ति शून्य मानस में अपने अभाव पर अट्टहास कर रही थी। संवेदन चोट—मानुषता का दूसरा नाम विजय दुर्बलता। आह! कल्पना सोता—कल्पना की गर्जना कितनी सुरम्य है! इसी की छाया में मानस के सुख दुःख मन को स्पंदित कर जाते हैं। संवेदन वक्ता—संवेदनाजन्य भाव-संघर्ष ही अनुभूति को तीव्र कर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। १५६—अनन्त की गणना—तारों से ही अनन्त संख्या का बोध होता है। जब कामना प्रदीप—संध्या तारा-दीप लेकर वासना सागर के तट पर आई। हे बावरी रजनी! तू उसकी रंग-बिरंगी साड़ी फाड़ कर क्यों हँसती है? (प्रस्तुत ध्वनि-संध्या का गमन, रात्रि का आगमन)। १५७—इस अनन्त मृदु-हास—मानव के दुर्दैव विधान का इतिहास संध्या तम-चूर्ण को अश्रुजल में मिला कर बनी स्याही से लिखती है। उसी समय राका-रजनी उसकी असफलता पर हँसती है। समीर मिस (अपन्हुति) समीरण, निशा नायिका के अभिसार-प्रयत्न का श्वासोच्छ्वास है। विकल खिलखिलाती तेरी ज्योत्स्ना के हास में ओस-कण व ऊर्मियों में उच्छृंखलता आ जायेगी। १५८—रजत .... भूल—चन्द्र-पुष्प के पराग को इतनी उन्मत्तता में न बिखेर, नहीं तो तू स्वयं उसमें भटक जायेगी। फटा हुआ भोली-भाली—नील-निचोल के छिद्रों से बिखरते हुए सौंदर्य को दरिद्र विश्व लूटता जा रहा है और तू बेखबर है। ऐसे अतुल दाग—चन्द्रतारक मणिराजि के बीच भी तू इतनी उदास क्यों है? क्या अतीत की दहनकारी स्मृतियों व मर्माघातों को तू सहला रही है? मैं भी भूल —मनु कहते हैं मेरा मन भी कुछ खोया-खोया सा प्रतीत हो रहा है। १५९—मिले देना—मेरा

अगर मन भी कहीं पड़ा मिले तो मुझे देना, मैं तुम्हें पुरस्कार दूंगा।

४—राम की शक्ति-पूजा (श्री निराला)

१६३—तीक्ष्ण-शर कर—स्फूर्ति वाले करों में प्रखर शर लेने वाले राम। शतशेल वरण—सैकड़ों बर्छियों को रोकने वाले। नीलनभ—जलद-सम घोर। प्रतिपल समूह—प्रतिक्षण बदलने वाले व्यूहों के भेदन में कुशल। प्रत्यूह—विघ्न। विच्छुरितवह्नि—अग्नि उद्गीर्ण करने वाले। महीयान—बड़े समर्थ। राघव-लाघव—राम का रण-चातुर्य। वारण—रोकना। विश्व भाव—विश्वविजयी दिव्य शरों की कुंठा। बद्ध-कोदंड—धनुष ग्रहण कर। वारित—छोड़ कर। १६४—रावण-संवर—रावण को रोकना। वाहिनी—सेना। श्लथ—ढीला। स्खलत—गिरता हुआ। मन्थर—धीरे-धीरे। १६५—विधान—विधि, पूजा। दुराक्रान्त—दुर्दम्य, दुर्जेय। पृथ्वी-तनया—सीता सौंदर्य। १६६—अन्तराल—बीच में। गोपन—रहस्य संकेत। १६७—शेषशयन—लक्ष्मण। युग 'अस्ति-नास्ति'—राम के चरण युगल अस्तिनास्ति के प्रतीक। अजपा—उच्चार-रहित मंत्र। १६८—घूर्णावर्त—जलभँवर में घूमते हुए। रावण-महिमा—रावण की शक्ति अमा—अंधकार, हनुमान उसमें तेज पुंज। १६९—प्रबोध—समझाना। १७०—तारा-कुमार—अंगद। अर्बुद—सौ करोड़ की संख्या। पारिषद-दल—सभासद। १७१—दुराव—छिपाना। मसक दंड—मच्छरवत्। १७२—निशित—तीक्ष्ण। संवृत करतीं—रोकतीं। १७५—खर्व—बौना, क्षीण। १७६—कर-जप—हाथ की माला। पुरश्चरण—मंत्रसिद्ध करना। आज्ञा—भृकुटी-मध्य चक्र। १७७—तूणीर—तरकस।

५—मुक्तक (श्री पंत)

१८१—दुराव—छिपाव, रहस्य। १८३—पारद—पारे के समान तरल शुभ्र। १८४—विधुर—अधीर, खिन्न। व्यजन—पंखा। १८७—स्तन्य—दूध। १८८—अस्थिशेष—हड्डी के कंकाल। असार भव-शून्य—निस्सार संसार का अभाव। जग पूर्णकाम—संसार की कामना पूर्ण हो गई। तमिस्र तुम—

बालुप्य पुंज। १८९—मृत . . . . . भूत–विगत रूढ़ संस्कृति के संस्कारो को। मनोज—काम-संकल्प। साम्राज्यवाद शात—(सागरूपक) साम्राज्य-वाद ने मुक्त मानवता को दासी बना रक्खा। दासता की बेड़ी डाल कर शासको के प्रहरी बिठा दिये; उस कारा में मानव की मुक्त आत्मा (गाधी) का जन्म हुआ जिसके पद को छूकर शोषण की यमुना की बाढ रुक गई। १९०—पत्रों के . स्वर—(मानवीकरण) वन का मर्मर पत्र संपुटो में बन्द हो गया जैसे वीणा के तारो मे स्वर। धूलिहीन क्षीण—गोधूलि शात हो गई। पथ मटमैले सर्प के समान पतला व टेढा-मेढा। इस महाशान्ति आर-पार—आशा की प्रखर धार मानस शान्ति को मिटा देती है। लहरों पर शिशिर से डर—अस्तगामी सूर्य की रश्मि-रेखा नीलिमा में परिणत हो गई, मानो ओठो की ललाई पर पाला पडा गया हो (शरद की शीतजन्य कालिमा)। १९१—अवलुप्त . . . टेक—नभ प्रांगण में दीप्त नक्षत्र ऐसा प्रतीत होता था मानो मन मे दृढ सकल्प उत्पन्न हो गया हो। दुर्लभ निर्वन—व्यक्तित्व स्थापित करना कठिन है, नक्षत्र अपनी अतृप्त कामना से निर्धन सा प्रतीत हो रहा है। एकाकीपन . रे न पार—एकाकीपन का भार असह्य है। शून्य एकाकीपन हृदय पर विषाद का मेघ बन छा जाता है। १९२—वह आत्म जग दर्शन–एकाकी शुक्रतारा एक परम तत्व का प्रतीक है, तत्पश्चात् अनन्त नक्षत्र नाना नामरूपात्मक जगत्सत्ता के रूप में प्रतिभासित होते हैं। एक ही विराट् सत्ता से समस्त सौर-चक्र प्रवर्तित है। १९३—सैकत शैय्या—रेतीली सेज। कुन्तल—केश-पाश। वर्तुल—वृत्ताकार। रजत पुलिन—चाँदी के चमकते सैकत तट। १९४—प्रमन—प्रमुदित मन। तिर्यक् मुख—मुँह को मोड कर। भ्रू रेखा सी अराल—वक्रिम भृकुटी सी वह कौन विहग (अतिशयोक्ति) चन्द्र रूपी चकवा विकल होकर छाया की कोकी को ढूढ रहा है। १९५—प्रतनु भार—हलकी। उथला—छिछला। लग्गी—बाँस, डंडा। हे जग जीवन .. अमरत्व दान—मानव को भवसागर में जन्म मृत्यु के ओर-छोर के बीच में जीवन नौका पर विहार करना पड़ता है। यही 'नौका-विहार' आत्मा के

चिरन्तन तत्व का परिचायक है। १९६—इन म्लान ... कवि कुसुमों के जीवन से मानव-जीवन की तुलना करता है—कुसुमों का पल हँसता ही रहता है, पर मानव के म्लान होठों पर हँसी स्थिर नहीं रहती। १९७—दुख दावा ...... कण—अरण्य में दावाग्नि के बाद अंकुर अधिक होते हैं। ताप-तप्त मानव-जीवन में नवीन सृजन शक्ति उत्पन्न हो जाती है। करुणा का क्रंदन ही नव-सजीवन की वर्षा करता है। १९८—व्रतति—लता। हिम-गात—शीतल-शरीर। मदिराभ—मद-घूर्णित। १९९—कपोलों की मदिरा—गालों की ललाई। पाटल—गुलाबी। शुक-नासा—तोते जैसी नाक। व्याज—बहाना। २००—कनियार—कनेर। नर्म-मर्मज्ञ—सेवा-पटु।

६—गीति-काव्य (सुश्री महादेवी)

२०५—विरह का जलजात जीवन—विरह दुख से ही जीवन कमल का 'सृजन-सिंचन-शृंगार' होता है। जीवन सौंदर्य विरह प्रदत्त है। अश्रु ... बरसात—वसंत इस कमल के अश्रुरूपी मकरंद को लुटाता है, वर्षा अश्रु की पच्चीकारी सजाती है। जो तुम्हारा ... प्रात—यदि यह जीवन जलजात तुम्हारी सेवा का उपहार बन सके तो तुम्हारे दर्शन की उषा-रश्मि से मुकुलित हो जायगा। इसकी जीवन-साध यही है कि तुम्हारी सेवा का उपकरण बन सके।

२०६—बीन भी हूँ ... रागिनी भी हूँ—जीवात्मा परमात्मा से प्रार्थना करती है कि मेरा पंच भौतिक पिंड भी तुमसे बना है तथा हमारा अध्यात्म तत्व भी तुम्हारा ही है (स्थूल व सूक्ष्म शरीर के उपादान कारण तुम्हीं हो)। शाप हूँ ... बंधन में—देह पालन करना पाप का फल है, पर यह कारा मेरे लिए वरदान बन गई है क्योंकि मैंने तुम्हें इसमें बाँध लिया है। नयन ... बंध हूँ—जैसे चातक में मेघ-लालसा, दीपक में शलभ-प्रीति, पुलकपुंज में गंध का प्रेम होता है वैसे ही मैं भी ... के समान तुम्हारे तन से अभिन्न हूँ। दूर तुम से ... सुहागिनी भी हूँ—तुमसे चिर पृथक होते हुए भी सौभाग्यवती हूँ। मेरे मानस की अनुराग ... तुम्हारे

समागम की प्रतीक है। २०७—पात्र भी मधु भी चाँदनी भी हूँ—समस्त प्रतीयमान भिन्न तत्वों के मूल में एक अभिन्न सत्ता है। मैं सुधारस का प्यासा अधर भी हूँ तथा स्मिति हास की सुधा भी—ज्ञाता-ज्ञेय का भेद मिट गया।

२०८—दे प्रकाश का गल-गल—हे जीवन-दीपक, तेरे अस्तित्व का एक-एक अणु गलकर लोक-पथ को प्रशस्त करता रहे। जलते नभ . बादल—नभ में अनन्त तारक सागर के अन्तःकरण, जलद गर्भ में विद्युत, सबमें तेरी ज्वाला-प्रेरणा ओतप्रोत है। २०९—मेरी चंचल—मेरी शून्य आहें तुझे न बुझा सकेंगी, मेरी निर्निमेष दृष्टि तुझ झंझा से सुरक्षित रखेगी! अर्थात्—जीवन के सुख-दुख की झंझा सकल्पात्मक तप साधना को न झकझोर सकेगी।

२१०—मैं नीर भरी—वेदना भरे मानव जीवन की व्याख्या कितनी मार्मिक है! स्पदन मचली—मेरी सिहरन में मृत्यु का संकेत है। मेरे क्रन्दन में विश्व की वेदना, नेत्रों में दीपज्वाला, मेरे पलकों में सरिता छिपी है। मैं क्षितिज बन निकली—मेघ रेखा क्षितिज पर ऐसे आती है जैसे ललाट पर चिन्ता की रेखा। मानस मरु के रजकणों को जीवनामृत देकर नवीन भावांकुर देती हूँ। पथ अंत खिली—मेरा आगमन तथा गमन भव-पथ को मलिन नहीं करता। अज्ञात रूप से मैं आती-जाती हूँ। मेरा आगमन जन-मानस में हर्ष का स्पदन बन जाता है। २११—परिचय . आज चली—नीरद रेखा का परिचय इतना ही है कि कल प्रादुर्भाव हुआ और आज अवसान! उसका आद्यंत एक क्षण में बँधा है।

२१२—क्या पूजा क्या उस निराकार ब्रह्म की पूजा-अर्चना किस प्रकार हो इसका विधान बताया गया है। सगुण सत्ता की नवधा भक्ति जिस रूढ़ पद्धति पर होती है उसके विपरीत केवल आत्म-सत्ता का सर्व-समर्पण ही निर्गुण सेवा का प्रतीक है। श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति का निर्गुण निरूपण।